जैन सूक्तियां

१ पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्य नेच्छन्ति मानवा ।
फल नेच्छन्ति पापस्य पाप कुर्वन्ति यत्नत ॥ गुणभद्राचार्य

अर्थ—मनुष्य पुण्य का फल सुख तो चाहते हैं। किन्तु पुण्य क करना नही चाहते। और पाप का फल दुःख कभी नहीं चाह किन्तु पाप को बडे यत्न से करते हैं।

२ हेयोपादेयविज्ञानं नो चेद् व्यर्थ श्रम श्रुतौ। वादीभसिं

अर्थ—यदि शास्त्रों को पढ़कर हेय और उपादेय का ज्ञ नहीं हुआ, किस में आत्मा का हित है और किस म आत्मा अहित है, यह समझ पड़ा नही हुई तो श्रुताभ्यास म परिश्रम क व्यय ही हुआ।

३ कोऽन्धो योऽकार्यरत को बधिरो य शृणोति न हितानि।
को मूको य काले प्रियाणि वक्तु न जानाति ॥ प्रश्नोत्तररत्नमाला

अर्थ—अन्धा कौन है ? जो न करने योग्य बुरे कामों को क मे लीन रहता है। बहरा कौन है ? जो हित की बात नही सुनत गूंगा कौन है ? जो समय पर प्रियवचन बोलना नहीं जानता।

संयुक्तानां वियोगश्च भवतीह नियोगत ।
किमन्यरन्यतोऽन्यस्मिन् निःसंगो हि निवर्तते ॥६०॥ क्षत्रचूडामणि

अर्थ—जिनका संयोग हुआ है। उनका वियोग भी अवश्यम है। अन्य की बात ही क्या है किन्तु प्राणी सब कुछ यहा पर। कर इस शरीर से भी अकेला ही निकल जाता है।

पापाद् दुःखं धर्मात् सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम्।
तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम् ।८। आत्मानुशासन

अर्थ—पाप से दुःख और धर्म से सुख होता है, यह बात जनों में भली प्रकार प्रसिद्ध है। इसलिये जो भव्य प्राणी सुख अभिलाषा करता है, उसे पाप को छोड कर निरन्तर धर्म आचरण करना चाहिए।

दैनिक जैन धर्म-चर्या

(जैन गृहस्थ का प्रतिदिन का धर्म आचरण)

★

लेखक —

अजितकुमार शास्त्री, प्रभाकर

सम्पादक—जैन गजट, देहली।

★

प्रकाशक —

मन्त्री —स्वाध्यायशाला

श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर

सब्जी मण्डी (वफ़्खाना), देहली।

★

सातवीं बार ८००० | २६ १० ६५ कार्तिक सुदी २ मंगलवार वीर संवत् २४९२ | मूल्य ३० पैसे

डाक द्वारा मँगाने वाले सज्जन ४० नये पैसे के टिकिट भेजें।

विषय-सूची

आद्य वक्तव्य

अन्य भवों की अपेक्षा मनुष्य भव आत्म-उन्नति के लिये अधिक उपयोगी है, अतः मनुष्य जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य है इसको व्यर्थ खोना बड़ी भारी भूल है। इस कारण आत्म हित के किसी भी कार्य में जरा भी प्रमाद (आलस्य) न करना चाहिये।

भोजन, विषय सेवन, नींद, घूमना फिरना आदि कार्य मनुष्य से कहीं अच्छा पशु-पक्षी किया करते हैं, अतः खाना पीना, इन्द्रियाँ तृप्त करना, धन संचय करना, सन्तान उत्पन्न करना कोई महान् कार्य नहीं क्योंकि इनसे आत्मा की तृप्ति नहीं होती। आत्मा की तृप्ति के लिये धर्म का आराधना उपयोगी है।

जो व्यक्ति निरन्तर आत्म धर्म-आराधना के लिये घर परिवार को छोड़कर साधु न बन सकता हो उसको गृहस्थाश्रम में रहकर धर्म आराधना करना चाहिये। आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये परमात्मा की पवित्र मूर्ति अपने सामने रखकर उनके समान स्वयं बनने की भावना रखनी चाहिये। इसी उद्देश्य से मन्दिर बनाकर वहाँ प्रतिमा विराजमान करना, जिनवाणी का अभ्यास, सामायिक (ध्यान आदि) कार्य किये जाते हैं।

मनुष्य के जब तक हाथ, पैर और नेत्र काम देते हैं तब तक उसका कर्तव्य है कि अपनी आत्मा को परमात्मा की ओर ले जाने के लिये मन्दिर में जाकर वीतराग परमात्मा का विनय के साथ दर्शन-पूजन कर जिससे कुछ आत्मा का सुधार मिले। इस कारण प्रातःकाल अन्य सांसारिक कार्य करने से पहिले भगवान् का दर्शन पूजन अवश्य करना चाहिए। अपने मुख से भगवान की स्तुति पढ़कर अपनी जीभ पवित्र करना चाहिये। पता नहीं आज जो यह शुभ अवसर मिल रहा है वह कल भी मिल सकेगा या नहीं।

मुनि भी जिनेन्द्र भगवान का दर्शन, विनय, स्तुति तथा भाव पूजन करते हैं तब गृहस्थ को तो यह और भी अधिक करना चाहिये। पहाड़ी धीरज, दिल्ली के तथा अन्य अनेक धार्मिक प्रिय मित्रो ने दर्शन पूजन की विधि के विषय में कुछ संक्षेप से लिखने की प्रेरणा की थी उनके अनुरोध से इस पुनीत कार्य मे मेरा कुछ समय लगा है। सम्भव है इसमे प्रमाद-वश त्रुटियां रह गई हो, विज्ञ सज्जन उनकी सूचना दें जिससे उन्हें भविष्य में सुधारा जा सके।

भाद्रपद सुदी ५ बुधवार
वीर सं० २४८१
२१-९-५५

अजितकुमार शास्त्री
सम्पादक जैन गजट
देहली

इस पुस्तक का प्रकाशन

प्रथम संस्करण सन्	१९५५—२०००	
द्वितीय '	"	१९५६—५०००
तृतीय '	"	१९५७—५०००
चतुर्थ '	'	१९६०—३०००
पाँचवा '	'	१९६२—४०००
छठा '	"	१९६४—६०००
सातवा "	'	१९६५—८०००
	कुल	—३३०००

पुस्तक प्राप्ति तथा पत्र व्यवहार का पता—

श्री धरमचन्द जी जैन
मैसर्स महावीर प्रसाद एण्ड संस
चावड़ी बाजार, देहली

श्रीकृष्ण जैन,
४५३७ पहाड़ी धीरज
देहली ६

दो शब्द

गाथार्थी में वत्थु सहावो धम्मो अर्थात वस्तु के स्वभाव को धर्म बताया है। जो जिस वस्तु का स्वभाव है वही उसका धर्म कहलाता है। जैसे अग्नि का स्वभाव गर्मी तथा जल का स्वभाव शीतलता है। यही उनके धर्म हैं इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञान दर्शन हैं पर अनादिकाल से कर्मों के कारण वह स्वभाव विकृत हो रहा है। कर्मों को दूर करके आत्मा को पवित्र बनाने और उसके असली स्वरूप को प्राप्त करने के लिये व्रत उपवास संयम स्वाध्याय ध्यानादि जो साधन बताये गये हैं उनको भी धर्म कहा गया है क्योंकि ये आत्मा के निज धर्म को प्राप्त कराने में साधन हैं। आत्मा के निज स्वरूप की प्राप्ति के लिये मानव जीवन में ही विशेष प्रयास किया जा सकता है।

प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है पर जब तक वह मोह माया में फंसा रहता है और योनियों में भ्रमण कर दुख उठाता ही रहता है। संसार के दुःख से छूटने तथा सुख प्राप्त करने के लिये जैनधर्म में गृहस्थ तथा मुनि धर्म का प्रतिपादन किया गया है। मुनिधर्म संसार-त्यागी व्यक्तियों के लिये है बाकी लोग घर में रहकर धर्म साधन करते हुए विषय-कषाय को कम करके आत्मोन्नति के मार्ग में लग सकते हैं।

ग्रंथों में गृहस्थ जीवन की बहुत प्रशंसा की गई है। सफल गृहस्थ-जीवन मुनि जीवन की सीढ़ी है तथा उसमें परम सहायक है। मुनि लोग अपने आहारादि के लिए गृहस्थों पर ही आश्रित होते हैं। अतः उचित रूप से जीवन बिताने वाला गृहस्थ ही महान् पुण्य का भागी बन सकता है और धीरे धीरे धर्माभ्यास करते हुए मुनि-व्रत धारण कर आत्म-कल्याण के मार्ग में पूर्णतया अग्रसर हो सकता है।

वर्तमान में मानव भौतिक पदार्थों में लीन होकर अपने धर्म कर्म को भूलते जा रहे हैं। उनको अपनी धार्मिक क्रियाओं का ठीक ज्ञान भी नहीं हो पाता। अत सरल शब्दों में गृहस्थों के कर्तव्य पर प्रकाश डालने वाली एक पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। श्रीमान पं० अजितकुमार शास्त्री सम्पादक जैन गजट समाज के प्रतिष्ठित विद्वान तथा सुलेखक हैं। आपने बहुत ही उपयोगी साहित्य का सृजन किया है। यह पुस्तक लिखकर तो आपने एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति की है। थोड़े समय में ही पुस्तक का यह सातवाँ संस्करण निकलना पुस्तक की उपयोगिता का एक बड़ा प्रमाण है।

श्री बाबू श्रीकृष्णजी को इस प्रकार के उपयोगी साहित्य का प्रकाशन कर अल्प मूल्य में उसे सर्वसाधारण तक पहुंचाने का बड़ा चाव और लगन है। वे इसके लिये सदा प्रयत्नशील रहते हैं। आपने कई उपयोगी प्रकाशन किए हैं। इस पुस्तक की ३३००० प्रतियाँ छप चुकी हैं। आपका प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है।

स्वाध्यायशाला श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर वफ खाना, सब्जी मण्डी-देहली के धर्म प्रेमी सज्जनों ने इस कार्य को अपने हाथ में लेकर बहुत उपयोगी कार्य किया है। आशा है कि वहाँ से ऐसे प्रकाशन बराबर होते रहेंगे।

अन्त में मैं धार्मिक सज्जनों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस उपयोगी पुस्तक से लाभ उठावें।

हीरालाल जैन 'कौशल'
(५ अक्तूबर १९६५) (साहित्यरत्न शास्त्री न्यायतीर्थ)
अध्यक्ष—जैन विद्वत्समिति, देहली

र्या

...इस ... ग्रंथ ...

प्रकाशन में ...

महायता ...

ि भाग भी प्रका... है ...

४१) मा० ...

४१) ...

३७) मा० ...

३६) ...

३६) मा० ...

३५) मा० ...

३४) मा० ...

३४) मा० ...

३१) मा० ...

२१) मा० ...

२१) ...

२४) मा० ...

२०) मा० ...

१६) मा० ...

१३) मा० ...

१०) मा० ...

११) मा० ...

११) मा० ...

१२) मा० ...

११) मा० ...

...र का स्वभाव ...

...देखना जानना ...

Right fait...

...म्यक्चारित्र (आ...

...क ... प्राप्त हु...

...मा का उत्तम ...

...अहिंसा आदि ...

...के अन्दर है ।

...जन ...

...मे ...

११) ला० फिरोजीलाल जैन, पहाड़ी धीरज, देहली।
११) मन्जूरानी सुपुत्री बा० श्रीकृष्ण जैन पहाड़ी धीरज, दे०।
११) ला० महावीरप्रसाद सुरेशचन्द जैन पहाड़ी धीरज, दे०।
११) ला० सुगनचन्द जैन, (अलवर वाले प० धी० दे०।
११) ला० गिरजीलाल जैन, सदर खाड़ी बाजार, देहली।
८) ला०पन्नालाल ७), ला०मुरेन्द्रकुमार ६) प०धी०,देहली।

११६) कुल

आर्थिक सहायता प्राप्त होने पर भी पुस्तक का कम-से कम मूल्य इस कारण रक्खा गया है कि पुस्तक लेनेवाले उसका सदुपयोग करें। बिना मूल्य की पुस्तक का लोग उचित उपयोग नहीं करते। ज्ञानप्रचार ही हमारा उद्देश्य है, व्यवसाय नहीं। इसी कारण हम कम से कम मूल्य पर साहित्य वितरण करते हैं। जो धर्म प्रेमी सज्जन ऐसे प्रकाशन के प्रचार में सहयोग देना चाहें वे इस प्रकाशन की अधिक से-अधिक प्रतियाँ खरीदकर वितरण कर सकते हैं। अथवा प्रकाशन में यथाशक्ति आर्थिक सहायता निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें।

श्री करण जैन

मन्त्री—श्री शास्त्र स्वाध्याय शाला
श्री पारसनाथ दि० जैन मन्दिर
बाबाजी की बगीची दफ्तराने के पीछे
सब्जी मण्डी देहली ६।

॥ ॐ नमः सिद्धम् ॥

दैनिक जैनधर्म-चर्या

★

धर्म क्या है ?

पदार्थ का स्वभाव धर्म कहलाता है। जैसे अग्नि का स्वभाव धर्म गर्मी है। इसी तरह आत्मा का स्वभाव चेतना, देखना जानना है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप सम्यग्दर्शन (सच्ची श्रद्धा Right faith) सम्यग्ज्ञान (सत्यज्ञान Right knowledge) सम्यक्चारित्र (आत्म शुद्धि करने वाला सच्चारित्र Right conduct) के द्वारा प्राप्त होता है इस कारण इन तीनों को भी धर्म कहते हैं। आत्मा को उत्तम शुद्ध बनाने वाले तथा कोमल सरल परिणामों को सत्य अहिंसा आदि कार्यों को भी धर्म कहते हैं। इन सब धर्म स्वरूपों के शब्दों में अन्तर है भाव सबका एक ही है।

जैन धर्म

आत्मशत्रुओं (विकारभावों) को जीतने वाले को 'जिन' अर्थात् (जयति इति जिन —विजेता) कहते हैं। महान् विजेता जिनेन्द्र भगवान् ने जो उत्कृष्ट महान् विजेता—परमात्मा बनाने वाला मार्ग बतलाया उसको जैन धर्म कहते हैं।

तीन चिन्ह

जैन धर्म अनुयायी के तीन विशेष चिन्ह हैं—१—रात्रि में भोजन

न करना २—पानी कपड़े से छानकर पीना ३—प्रतिदिन अरहंत देव विदेह जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करना। इसके सिवाय प्रत्येक मद्य मांस (गोश्त) मधु (शहद) अष्ट उदम्बर फल (बड़, पीपर, ऊमर, पाकर, कठूमर) इन आठ चीजों को भी न खाना। छोटे तथा बड़े सभी त्रस जीवों को संकल्प से (इरादतन) न मारना भी जैन धर्मानुयायी का चिह्न है।

जैन धर्म का इतिहास

इसी युग में आज से करोड़ों वर्ष पहले अयोध्या में राजा नाभिराय की रानी मरुदेवी के उदर से एक महान् सौभाग्यशाली पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम 'ऋषभनाथ' रक्खा गया। ऋषभनाथ जन्म से ही अवधिज्ञानी थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम में रहकर मनुष्यों को खेती करना, लिखना पढ़ना, तरना बर्तन बनाना आदि कलायें सिखलाई। बहुत दिनों तक राज्य करने के बाद एक दिन राजसभा में नाचती हुई नीलांजना की मृत्यु देखकर संसार के भ्रमण से उनका चित्त उचट गया और राजपाट अपने बड़े पुत्र भरत को सौंप कर नग्न साधु बन गये। तब उन्होंने बहुत समय तक कठिन तपस्या की और क्रोध मोह ममता आदि विकारी भावों पर विजय पाकर पूर्ण ज्ञानी पूर्ण सुखी और अनन्त शक्तिमान वीतराग हो गये इस कारण आपका नाम जिन (विशेष वीतराग) प्रसिद्ध हुआ।

उस समय उन्होंने समवशरण नामक विशाल व्याख्यानसभा में देव मनुष्य पशु पक्षियों आदि सभी जीवों को संसार से छूटने का उपदेश दिया। इस कारण उनका धर्म जैन धर्म प्रचलित हुआ। इस तरह इस समय में प्रचलित जैन धर्म के आदि प्रवर्तक ऋषभनाथ ही माने जाते हैं। अतः जैन धर्म के इस युग के सबसे पहले उपदेशक (तीर्थंकर) हुए हैं।

भगवान् ऋषभनाथ का पुत्र भरत इस युग का सबसे पहला चक्रवर्ती

सम्राट हुआ उसी के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है। भारत के सौतेले महा बलवान भाई बाहुबली ने भी एक वर्ष तक अडिग खड़े रहकर तपस्या की थी और मुक्ति प्राप्त की थी। भगवान् ऋषभनाथ की ८६ फुट ऊँची प्रतिमा बड़वानी के समीप त्रिपुरा पर्वत पर है। बाहुबली की ५७ फुट ऊँची पाषाण की मूर्ति श्रवण बेलगोला (मैसूर) में है।

मुहनजोदाड़ो (सिन्ध) में पृथ्वी खोदने पर जो पाँच हजार वर्ष पुरानी बहुत सी चीजें निकली हैं उनमें से कुछ ऐसी मुहरें (सीलें) भी हैं जिन पर भगवान ऋषभनाथ की नग्न खड़ी मूर्ति बनी हुई है जिससे सिद्ध होता है कि भगवान् ऋषभनाथ की पूजा पाँच हजार वर्ष पहले भी भारत में होती थी।

भगवान् ऋषभनाथ के मुक्त होने के पीछे इसी युग में अजितनाथ आदि २३ तीर्थंकर और हुए उन्होंने भी अपने अपने समय में उसी जैन धर्म का प्रचार किया। राम लक्ष्मण के समय में २०वें तीर्थंकर थी 'मुनि सुव्रतनाथ' थे। यह बात योगवासिष्ठ ग्रन्थ के नीचे लिखे श्लोक से सिद्ध होती है —

> नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः ।
> शान्तिमास्थितुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा ॥

संसार से उदास हुए रामचन्द्र कहते हैं—मैं राम (जिसमें योगीजन रमण करें) नहीं हूँ न मुझे किसी तरह की चाह है न किन्हीं पदार्थों में मेरा मन लगता है। मैं तो अपनी आत्मा में ही शान्ति पाना चाहता हूँ, जैसे कि जिनदेव पाता—रामचन्द्र के समय में भी 'जिनदेव' (तीर्थंकर) थे।

नारायण कृष्ण के चचेरे भाई भगवान् नेमिनाथ जैन धर्म के प्रचारक २२वें तीर्थंकर थे वेदों में तथा पुराणों में भगवान् नेमिनाथ का भी नाम आया है।

Some scholars of history have now begun to admit that 22nd तीर्थंकर श्री नेमिनाथ ■ a historical

figure and say that the saint Ghor Anngiras who taught Krishna the lesson of आत्मज्ञान is none else but नेमिनाथ himself

भगवान् पार्श्वनाथ २३वें तीर्थंकर थे और अन्तिम तीर्थंकर कुण्डल पुर (बिहार) में राजा सिद्धार्थ के पुत्र भगवान् महावीर हुए। उन्होंने अब से ढाई हजार वर्ष पहले सर्वज्ञ वीतराग पद पा लेने के बाद ३० वर्ष तक जैन धर्म का प्रचार किया।

भगवान महावीर की मुक्ति हो जाने पर श्री कुन्दकुन्द समन्तभद्र अकलंक, विद्यानन्दि आदि महान् आचार्य जैन धर्म की प्रभावना करते रहे। इस तरह जैन धर्म ऐतिहासिक दृष्टि से संसार के सब धर्मों से प्राचीन है।

संसारी जीव

संसार में कर्म बन्धन के कारण इस जीव को रहने के लिये जो घर मिलता है उसका नाम शरीर है। इस अस्थायी घर (शरीर) को अपनी निजी वस्तु मान कर यह जीव शरीर को सुख देनेवाली चीजों—वस्त्र भोजन मकान धन मित्र पुत्र स्त्री आदि से प्रेम करता है और शरीर को दुखदायक पदार्थों से द्वेष तथा घृणा करता है उनको अपना शत्रु समझने लगता है इसी मूल कारण से यह जीव संसार में शत्रु मित्र का नाता-बाना बुनकर काम क्रोध लोभ मोह अहंकार ममकार द्वेष ईर्ष्या, छल दम्भ हिंसा चोरी काम-सेवन परिग्रह-संचय आदि अनेक तरह के काम करता है और अपने पतन के लिये कर्मों का जाल तैयार करता रहता है। ऐसे कर्म जाल में फंसे हुए जीव आत्मा (साधारण) कहे जाते हैं।

महात्मा

जिन बुद्धिमान स्त्री पुरुषों ने विवेक द्वारा आत्मा और शरीर का

भेद ज्ञान हो जाता है वे शरीर को अपनी वस्तु नहीं समझते, इसी कारण शरीर से उनकी मोह ममता छूट जाती है। शरीर की तरह वे संसार की अन्य वस्तुओं को भी अपनी नहीं समझते विषय भोगों में भी उन्हें रुचि नहीं रहती। आत्मा को शुद्ध करने के लिये तप त्याग संयम का अभ्यास करते हैं। समता भाव का उनमें उदय होता है इसलिए संसार में उनका न कोई अपना मित्र दीखता है न कोई शत्रु। शान्ति वैराग्य बढ़ाने वाली बातों में उनकी रुचि बढ़ती जाती है। यदि वे गृहस्थाश्रम में किसी कारण रहते हैं तो घर का काम बड़ी उदासीनता से करते हैं उनकी यही इच्छा रहती है कि मुझे कब ऐसा अवसर मिले कि घर-बार छोड़कर एकान्त में आत्म साधना करता रहूं। जो लोग घर बार छोड़ सकते हैं वे सब-कुछ मोह छोड़कर अपना सारा समय आत्म-साधना में लगाया करते हैं। सारांश यह है कि भेदविज्ञान हो जाने पर मनुष्य का ध्यान बाहरी बातों से हट कर आत्मा की ओर लग जाता है। ऐसे मनुष्य महात्मा (विशेष उच्च) होते हैं। उनका कर्म-बन्धन ढीला हो जाता है।

परमात्मा

संसार के सभी पदार्थों से मोह ममता का सम्बन्ध तोड़कर जब साधु बन करके विरक्त पुरुष तप त्याग संयम के द्वारा तथा आत्म साधना में लीन हो जाते हैं तब उन के नया कर्म-बन्धन होना रुक जाता है और पुराना कर्म-बन्धन भी टूटता जाता है। इस तरह उनका आत्मा शुद्ध होता चला जाता है। आत्मा के ज्ञान दर्शन सुख सन्तोष धीरता वीरता गम्भीरता आदि गुण विकसित होते जाते हैं। इस प्रकार जब महात्मा अपनी शुद्धि करते-करते कर्म-बन्धन से छूट कर पूर्ण शुद्ध हो जाता है तब वह 'परमात्मा' (सबसे उच्च शुद्ध आत्मा) बन जाता है उस समय वह जन्म मरण से छूट कर अजर-अमर बन जाता है अज्ञान और मोह से छूट कर सर्वज्ञ वीतराग बन जाता है। तब उसमें

विकार, दोष, मलश नहीं रहने पाता। निरञ्जन निर्विकार सच्चिदान
हो जाता है समस्त दुखो से छूट कर अनन्त सुखी बन जाता है।

कर्म-बन्धन

स्वतन्त्रता को रोकने वाले साधन को बन्धन कहते है। ज
वनराज सिंह को पिंजडे म बन्द कर लिया जाता है। वह पिंजडे
बन्द महान् पराक्रमी सिंह अपनी इच्छा से मनचाहे स्थान पर घूम फि
नहीं पाता न मनचाहा आहार भोजन पान कर पाता है। अत
वह पिजडा उस पराक्रमी सिंह का बन्धन है। इसी तरह ज्ञान का घ
महान बलवान जीव भी कर्म-बन्धन से पराधीन बना हुआ है। कर्म
निमित्त से जीव को नरक म भी जाना पडता है और कीडे मकोडे आ
नीच योनियो मे भी रहना पडता है। इसलिए जीव को परतन्त्र बन
वाला बन्धन कर्म है।

पुद्गल (Matter) के विशेष प्रकार के स्कन्ध (परमाणुओ
सयुक्त समूह हैं। प्रत्येक जाव म
कार्माण वर्गणाओ —की
की शक्ति होती है खींचने
शक्ति होती है
शक्ति मन, वचन,
करने का काम

तदनुसार
अथवा वचन से
बुरा काय करता है
रूप योग

मनुष्य आयु का बंध होता है। अधिक शान्त भावों से तथा सदा धर्माचरण से देव आयु का बंध होता है।

६ नाम—जो संसारी जीव के लिए शरीर बनाता है। शुभ नाम कर्म के उदय से अच्छा सुन्दर स्वस्थ शरीर बनता है। अशुभ नाम कर्म के उदय से बुरा असुन्दर शरीर बनता है। अपने तथा अन्य जीव के शरीर-सम्बन्धी अच्छी भावना करने से शुभ नाम कर्म और बुरी भावना करने से अशुभ नाम कर्म का बंध होता है।

७ गोत्र—जो लोक प्रशंसित ऊँचे कुल में या लोकनिंद्य नीच कुल में जीव को उत्पन्न करता है। मनुष्यों में ऊँच गोत्र नीच गोत्र दोनों होते हैं। देवों में ऊँच गोत्र का उदय होता है। पशुओं तथा नरक में नीच गोत्र का उदय होता है। अपने कुल जाति वर्ण का अभिमान करने से नीच गोत्र का बंध होता है। अपने उच्च कुल का अभिमान न करने में विनयभाव से रहने से उन्नत काम करने से उच्च गोत्रकर्म का बंध होता है।

८ अन्तराय—लाभ होने बल बढ़ने भोग उपभोग की सामग्री प्राप्त होने तथा दान करने की भावना में जो विघ्न उपस्थित करता है वह अन्तराय कर्म है। दूसरों के बल भोग उपभोग धन लाभ आदि में विघ्न डालने से अन्तराय कर्म का बंध होता है।

यह आठ कर्मों का संक्षेप से विवरण है। जिन कार्यों के करने से इन कर्मों का बंध होता है यदि वैसे कार्यों को न करके उनसे उलटे अच्छे काम किये जावें तो इन कर्मों की शक्ति घटती है और आत्मा की शक्ति बढ़ती है। यदि रागद्वेष आदि दुर्भावनाओं को न करके आत्म ध्यान किया जाता है तो इस कर्मबंधन का क्षय हो जाता है।

जैनधर्म और ईश्वर

जैन धर्म की यह एक विशेष मान्यता है कि वह ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हुए भी उसे किसी व्यक्ति विशेष में ही केंद्रित नहीं

मानता है। बल्कि प्रत्येक आत्मा म ईश्वरत्व शक्ति स्वीकार करता है। वह किसी एक अनादि सिद्ध परमात्मा को तो नहीं मानता परन्तु अब तक कमरूपी मल को अलग करके जितने आत्मा मुक्त (परम आत्मा) हो चुके हैं और आगे भी होते रहेंगे जन सिद्धान्त के अनुसार वे सभी मुक्तात्मा सिद्धात्मा परमात्मा भगवान् या ईश्वर [illegible]। ये रागद्वेषादि १८ दोषो से छूट जाते हैं तथा उनके अनन्त दर्शन ज्ञान सुख वीर्य आदि आत्मिक गुण प्रकट हो जाते हैं। वे लोक के अग्रभाग म स्थित सिद्धालय म जा विराजते हैं। ससार के किसी भी कार्य से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता तथा जिस प्रकार धान म छिलका अलग हो जाने से चावलो म उगने की शक्ति नहीं रहती उसी प्रकार ससार म उत्पन्न होने का कारण कम रूप बीज नष्ट हो जाने पर सिद्धात्माओ को ससार म फिर कभी भी जन्म नहीं लेना पड़ता और वे सदा अपने निराकुल सुख म लीन रहते हैं। कम शत्रुओ को जीतने के कारण उनको जिन या जिनेन्द्र भी कहते हैं।

उनमे से कुछ मुक्तात्माओ को जिन्होने मुक्त होने से पूर्व प्राणियो को ससार के दुखो से छूटने और मुक्ति प्राप्त करने का माग बतलाया था जन धम म तीथकर माना गया है। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अव सर्पिणी म ऐसे तीथकरो की सख्या २४ होती है। उन्ही की अरहन्त (मोक्ष जाने से पूर्व) अवस्था की मूर्तियां जन मन्दिरो म [illegible] होती हैं।

हमारा लक्ष्य

जो स्त्री पुरुष ससार की अशान्ति व्याकुलता [illegible] छूटना चाहते हैं उनका लक्ष्य वह परमात्मा ही होता है [illegible]

Where is Thy God? I find no [illegible] in this absurd world

—Lala Lajpat Rai [illegible]

शुद्धि होकर भी जन्म मरण आदि दुख क्लेश दूर हो सकते हैं अत: अपने आपको पूर्ण शुद्ध निर्विकार वीतराग परमात्मा बनाना ही बुद्धिमान् स्त्री पुरुष का लक्ष्य हो सकता है।

लक्ष्य प्राप्त करने का साधन

अपने आत्मा को पूर्ण शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा बनाने के लिये अपनी दृष्टि बाहर से यानी संसार की ओर से हटाकर अंतरंग यानी आत्मा की ओर करनी चाहिये। ऐसा करने पर ही शरीर पुत्र मित्र धन आदि से मोह ममता दूर होती है।

इस कार्य को सिद्ध करने के लिए एक तो आत्मा का और अनात्मा (जड़ पदार्थ) शरीर धन मकान आदि का तथा महात्मा परमात्मा का कर्म बन्धन करने मुक्ति होने आदि बातों का आवश्यक ज्ञान होना चाहिये। उस ज्ञान के अनुसार अपनी श्रद्धा (विश्वास मान्यता) अटल हो जानी चाहिये। आत्म श्रद्धा ही सत्य ज्ञान को स्थिर रखने की भूमि है और आत्म श्रद्धा हो जाने पर उसके अनुकूल ही आत्मा को संसार से छुड़ाने के लिये क्रिया (चारित्र) होने लगती है।

किन्तु आत्म श्रद्धा को अटल बनाने के लिये बाहरी साधन या आश्रय (अवलम्बन सहारा) भी होना आवश्यक है क्योंकि जो मन सदा बाहरी वस्तुओं में भटकता है उसको आत्मोन्मुख (आत्मा की ओर) करने के लिए साधन भी बाहर का ही ठीक रहता है। वह बाहरी साधन है वीतराग परमात्मा की मूर्ति।

प्रतिमा की आवश्यकता

मन को बाहरी पदार्थों में उलझाने का कार्य स्पर्शन इन्द्रिय अन्य पदार्थों (वस्त्र भूषण तल तथा स्त्री पुरुष के शरीर आदि) को छूकर रसना इन्द्रिय भोजन पान आदि का स्वाद लेकर नासिका इन्द्रिय सूंघकर नेत्र इन्द्रिय अन्य पदार्थों का रंग रूप देखकर और कान अच्छे स्वर

गीत धर्म सुन करते करते हैं। मन भी इन्द्रियों के विषय भोगो में मग्न उलझा रहता है।

इस उलझाने का काम सब से अधिक नेत्र इन्द्रिय करती है क्योंकि अन्य इन्द्रियों का तो अपना विषय वस्तु कभी-कभी मिला करती है परन्तु नेत्रों को तो अपने लिये अनेक पदार्थ सदा मिलते रहते हैं। जागते समय तो आंखें संसार की बाहरी वस्तुओं का देखती हैं किन्तु सो जाने पर भी शरीर के बाहरी नेत्र बन्द रहकर भी जीव के भीतरी नेत्र काम करते है जिसके प्रभाव से स्वप्न-दोष आदि काम हो जाते हैं। इस कारण मन को सुलझाने के लिये विशेष रूप से नेत्र इन्द्रिय को शुभ लगाना चाहिए।

नेत्र जिस तरह जीवित सुन्दर स्त्री पुरुष को देखने के लिये लालायित रहते है इसी तरह निर्जीव सुन्दर स्त्री पुरुषो के चित्र मूर्ति आदि देखने के लिये भी लालायित (खिचते) हुआ करते हैं। चलचित्र (सिनेमा) में जड छाया चित्र ही दीख पड़ते है उस सिनेमा को देखकर ही मन में कौन तरह की तरंगें उठा करती है। कामी स्त्री पुरुष अपनी कामवासना जाग्रत रखने के लिए कामातुर स्त्री पुरुषो के चित्र अपने यहाँ सजाकर रखते हैं त्यागी विरागी अपने यहाँ साधु महात्माओं के चित्र सजाते है सरकार अपने देश के नेताओ तथा वीरों की मूर्तियाँ सब साधारण स्थानो पर स्थापित करती हैं।

तदनुसार मन को अंतर्मुख (आत्मा की ओर) करने के लिये वीत राग विशेष आत्मा परमात्मा की मूर्ति नेत्रो के लिये कार्यकारी है। क्यों कि आत्मा का जो स्वरूप (वीर धीर गम्भीर शान्त राग-द्वेष रहित स्वात्म-लीन) शास्त्रो में पढ़ा जाता है उसको समझने के लिये वही मूर्ति भी तो आँखो के सामने आनी चाहिए। जसे कि भूगोल का ज्ञान मान चित्र (नक्शे) के बिना देखे नही हुआ करता। हाथी सिंह आदि की शक्ल सूरत का ज्ञान कराने के लिये या पूर्वज (पूर्वज) पुरुषो का बोध

कराने के लिये उन सिद्ध पूज्य स्त्री पुरुषों के चित्र मूर्ति आदि निमित्त आवश्यक होते हैं। उसी तरह अपने लक्ष्य परमात्मा का ज्ञान कराने के लिये परमात्मा की वीतराग मूर्ति की आवश्यकता है।

वीतराग प्रतिमा को देखकर ही मन में यह भावना जमती है कि अपने आपको बाहरी वस्तुओं के सम्पर्क से अलग रखकर हम वीतराग विशेष अर्हन्त परमात्मा की मूर्ति की तरह शांत और निर्भय आत्मा में लीन होना चाहिए ऐसा हुए बिना सांसारिक व्याकुलता दूर न हो सकती।

भावना कैसी होनी चाहिए

अर्हन्त परमात्मा की प्रतिमा का दर्शन पूजन ध्यान करते हुए अपने मन के विचार उसी वीतराग प्रतिमा के अनुसार रागद्वेष मोह ममता रहित अपने आत्मा को शुद्ध करने के होने चाहिए। भगवान की मूर्ति हमारी भावना को शुद्ध करने का बाहरी साधन है।

वीतराग अर्हन्त का दर्शन पूजन विचार करने से जो परिणाम निर्मल होते हैं उनसे अशुभ (दुःखदायक) कर्म छूट जाते हैं या वे बदल कर शुभ (सांसारिक सुखदायक) हो जाते हैं। अशुभ कर्मों की शक्ति क्षीण होती है और शुभ कर्मों का बल बढ़ जाता है। इस ढंग से आत्मशुद्धि के साथ-साथ सांसारिक सुख शांति की विधि भी बन जाती है क्योंकि शुभ कर्मों के उदय से ही सुखदायक पदार्थों का समागम हुआ करता है।

आत्मा के परिणामों को शुद्ध या (मन्दकषाय रूप) शुभ करने के सिवाय भगवान की मूर्ति और कुछ नहीं देती न दे सकती है। इस कारण वीतराग भगवान का दर्शन पूजन चिन्तवन भक्ति करने का लक्ष्य आत्मा को शुद्ध शांत निर्विकार वीतराग बनाने का ही रखना चाहिये।

सांसारिक सुख की प्राप्ति

जिस प्रकार किसान अन्न उत्पन्न करने के लक्ष्य से बहुत परिश्रम

कोई घर व्यापार आदि का कार्य करने से पहले भगवान् का पूजन दर्शन करना अत्यन्त आवश्यक है।

गुरु-उपासना

समस्त परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि तथा ऐलक क्षुल्लक आर्यिका क्षुल्लिका आदि व्रती त्यागी का विनय के साथ उपदेश सुनना उनकी सेवा-शुश्रूषा करना उनकी आवश्यकता अनुसार कमण्डलु पीछी शास्त्र आदि उपकरण देना। विधिपूर्वक भक्ति से शुद्ध भोजन कराना आदि गुरु उपासना है। यदि निकट मे गुरु न हों तो एकान्त मे बड़ी भक्ति अनुराग से उन की स्तुति पढ़नी चाहिये।

स्वाध्याय

प्रतिदिन जिनवाणी म शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना पूछना पाठ करना चिन्तवन करना चर्चा करना स्वाध्याय है।

स्वाध्याय ज्ञान बढ़ाने का सबसे अच्छा सुगम साधन है।

संयम

सावधानी स देखभाल कर कार्य करते हुए जीवों की रक्षा करना तथा अपनी इन्द्रियों को वश म करना संयम है। इसके लिये प्रतिदिन भोजन पान वस्त्र आभूषण खेल देखने गाना सुनने काम सेवन करने सवारी करने आदि का नियम करते रहना चाहिये कि मैं आज इतनी बार भोजन करूगा ब्रह्मचर्य से रहूगा या एक बार विषय सेवन करूगा, इतने पदार्थ खाऊँगा। एक सेल देखूगा (या नहीं) आदि।

तप

इच्छाओं का रोकना तप है। इसके लिये भोजन कम करना एकासन, रसत्याग आदि करते रहना चाहिये। सिनेमा आदि के देखने आदि की इच्छाओं का रोकना चाहिये।

सारांश

जिन महात्माओं तीर्थंकरों आदि ने राज वैभव परिवार आदि सांसारिक सुख सामग्री छोड़ कर कठोर तपस्या करके परमात्मा पद प्राप्त किया था, अर्हन्त अवस्था (जीवन मुक्त दशा) में उन्होंने आत्म शुद्धि का मार्ग समस्त संसार को दिखाया था फिर पूर्ण मुक्त होकर संसार से अदृश्य हो गये उनका आदर्श प्राप्त करने के लिये उनकी अर्हन्त दशा की वीतराग प्रतिमा बनाई जाती है। उस वीतराग प्रतिमा का अर्हन्त भगवान की भावना व आत्म शुद्धि करने के लिये दर्शन पूजन विनय भक्ति चिंतन करना चाहिये।

गृहस्थ के ६ आवश्यक कर्म

जिस प्रकार मुनियों के प्रतिदिन आचरण करने के लिये ६ आवश्यक कार्य होते हैं उसी प्रकार गृहस्थ के भी ६ आवश्यक धर्म-कार्य हैं।

१ देवपूजा २ गुरु उपासना ३ स्वाध्याय ४ संयम ५ तप और ६ दान।

देव पूजा

अपने आदर्श देवाधिदेव श्री १०८ जिनेन्द्र भगवान् की अष्ट द्रव्यों से पूजन करना 'देवपूजा' है। गृहस्थ का यह मुख्य कार्य है। यदि किसी कारणवश अष्ट द्रव्य से पूजन न कर सके तो स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर मन्दिर में जाकर बहुत विनय और हर्ष के साथ भगवान का दर्शन करें। दर्शन स्तवन नमस्कार प्रदक्षिणा आदि भी पूजा का ही एक छोटा-कम श्रेणी का पूजन है। अपने आदर्श के स्मरण के लिए मनुष्य को प्रातःकाल सबसे प्रथम शुभपदार्थ को देखना चाहिये वीतराग भगवान से बढ़ कर शुभ दर्शन और किसका हो सकता है? अतः अप

कोई घर व्यापार आदि का कार्य करने से पहले भगवान् का पूजन दर्शन करना अत्यन्त आवश्यक है।

गुरु-उपासना

समस्त परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि तथा ऐलक क्षुल्लक आर्यिका क्षुल्लिका आदि व्रती त्यागी का विनय के साथ उपदेश सुनना उनकी सेवाशुश्रूषा करना उनकी आवश्यकता अनुसार कमण्डलु पीछी शास्त्र आदि उपकरण देना। विधिपूर्वक भक्ति से शुद्ध भोजन कराना आदि गुरु उपासना है। यदि निकट में गुरु न हो तो एकान्त में बड़ी भक्ति अनुराग से उन की स्तुति पढ़नी चाहिये।

स्वाध्याय

प्रतिदिन जिनवाणी के शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना पूछना पाठ करना चिन्तवन करना चर्चा करना स्वाध्याय है।

स्वाध्याय ज्ञान बढ़ाने का सबसे अच्छा सुगम साधन है।

संयम

सावधानी से देखभाल कर कार्य करते हुए जीवों की रक्षा करना तथा अपनी इन्द्रियों को वश में करना संयम है। इसके लिये प्रतिदिन भोजन पान वस्त्र आभूषण खेल देखने गाना सुनने काम सेवन करने सवारी करने आदि का नियम करते रहना चाहिये कि मैं आज इतनी बार भोजन करूंगा ब्रह्मचर्य से रहूंगा या एक बार विषय सेवन करूंगा, इतने पदार्थ खाऊंगा। एक खेल देखूंगा (या नहीं) आदि।

तप

इच्छाओं का रोकना तप है। इसके लिये भोजन कम करना एकासन रसत्याग आदि करते रहना चाहिये। सिनमा आदि के देखने आदि की इच्छाओं को रोकना चाहिये।

दान

गृहस्थाश्रम में परिग्रह के संचय तथा आरम्भ कार्य से जो पाप संचय हुआ करता है उस पाप भार को हलका करते रहने के लिये तथा मोह आदि विषयों का कम करने के लिये प्रतिदिन आहार औषधि अभय (रक्षा) और ज्ञानदान से से यथाशक्ति धर्म पात्रों मुनि आदि की भक्ति के साथ तथा दीन दुखी जीवों की करुणा भाव से आवश्यकतानुसार दान करते रहना चाहिये।

भूखे को भोजन नंगे भिखारी को वस्त्र देना अनाथ विधवा दुखी दरिद्री की शक्ति अनुसार सेवा उपकार करना उनका दुख दूर करना दान का ही रूप है। गृहस्थ को प्रतिदिन अपने बनाये हुए भोजन में से कुछ भोजन तथा अपनी आमदनी में से कुछ न कुछ (कम से कम एक पैसा) अवश्य दान के लिये रखना चाहिये। ये छह कर्तव्य-कार्य गृहस्थ को प्रतिदिन अवश्य करने चाहियें।

गृहस्थ का मुख्य धर्म

संसार से मुक्त होने के लिये धर्म तथा शुद्धोपयोग साक्षात् कारण है और गृहस्थों का शुभोपयोगरूप धर्म परम्परा कारण है। गृहस्थों की अन्य धार्मिक क्रियाओं में दान करना और अर्हन्त देव की पूजा करना मुख्य बताया गया है। दान में तथा पूजा में जितना त्याग-अंश है। उससे कर्मों का संवर तथा निर्जरा होती है और जितना शुभराग अंश है उससे पुण्य बंध होता है अतः दान और पूजा परम्परा से मुक्ति के कारण हैं। इनसे मनचाहा सांसारिक सुख मिल जाता है। समयसार के कर्ता परम आध्यात्मिक आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने रयणसार ग्रन्थ में लिखा है—

> दाण पूजा मुक्ख सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
> झाणाज्झयण मुक्ख जइधम्मे ण तं विणा सोवि ॥११॥

जिणपूजा मुणिदाणं करेइ जो देइ सत्तिरूवेण।
सम्माइट्ठी सावयधम्मी सो होइ मोक्खमग्गरओ ॥१२॥

अर्थ—दान देना और पूजा करना ये दोनों कार्य गृहस्थ धर्म में मुख्य हैं। इन दोनों कार्यों के बिना श्रावक गृहस्थ नहीं होता। मुनि धर्म में ध्यान और स्वाध्याय करना मुख्य है इनके बिना मुनि नहीं हो सकता। जो मनुष्य जिनेन्द्रदेव की पूजा करता है और शक्ति अनुसार मुनियों को दान देता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक धर्म पालने वाला है तथा मोक्ष मार्ग में लगा हुआ है।

अतः प्रत्येक भाई को प्रतिदिन पूजा तथा शक्ति के अनुसार दान अवश्य करना चाहिये।

रात्रि-भोजन

मनुष्य स्वभाव से दिवाचर (दिन में भोजन करने वाला) प्राणी है। दिन में भोजन मनुष्य के लिये सब तरह गुणकारी रहता है। सूर्य का प्रकाश जिस तरह मनुष्य के नेत्रों को देखने में सुविधा प्रदान करता है। सूर्य के प्रकाश में मनुष्य अपने भोजन में आये हुये सूक्ष्म जीव जन्तुओं, बाल आदि को अच्छी तरह देखकर उनके मुख में जाने से रोक सकता है। इसी तरह सूर्य का प्रकाश अनेक प्रकार के सूक्ष्म कीटाणुओं को भी उत्पन्न नहीं होने देता इस कारण दिन के समय भोजन करने से वे कीटाणु भोजन में नहीं आने पाते जो कि सूर्य अस्त हो जाने पर उत्पन्न हो जाते हैं और बहुत सूक्ष्म होने से नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ते।

सूर्य अस्त हो जाने पर वायु मण्डल भी सूर्य किरणों के अभाव से स्वच्छ स्वास्थ्यकारक नहीं रहने पाता तथा वृक्ष भी दिन भर की संचित दूषित वायु छोड़ते रहते हैं, इसी कारण दिन की अपेक्षा रात्रि में रोग प्रबल हो जाते हैं दिन की अपेक्षा रोगियों की मृत्यु संख्या रात्रि में अधिक होती है इसलिये स्वास्थ्य की दृष्टि से भी दिन में भोजन करना लाभदायक है।

सोने से पहले लगभग ४ ५ घण्टे पहले भोजन कर लेना भोजन पचाने के लिये आवश्यक है ऐसा तभी हो सकता है जबकि भोजन दिन में कर लिया जावे।

इसके सिवाय भोजन बनाते समय अनेक जीव जन्तु पतंगे आदि दाल, शाक साग आदि में पड़ जाते हैं उनकी हिंसा तो होती ही है किन्तु कभी-कभी वे भोज्य पदार्थ भी विषैले हो जाते हैं। जो प्राणनाश के भी कारण बन जाते हैं। गत वर्षों में एक बरात के मनुष्य इसी कारण मर गये कि उनके रात में बनाकर परोसे गये शाक में एक सांप गिर कर मर गया था उसके विष से वह शाक विषैला हो गया था। १८ २० वर्ष पहले मुसलमानों की एक बरात के १५ २० आदमी भी रात में बनाई गई खीर को खाकर मर गये थे। देखने पर पीछे मालूम हुआ कि खीर पकते समय छत में से एक काला सर्प खीर में गिर गया था। इन्दौर में एक वैष्णव पुजारी भी एक काले सर्प द्वारा विष मय विषैले दूध को पीकर मर गया था रात्रि के धीमे प्रकाश में विषैले दूध का बिगड़ा हुआ रंग उसे स्पष्ट दिखाई न दे सका। इत्यादि अनेक दुर्घटनाओं से रात्रि भोजन में बड़ी बड़ी हानियाँ प्रमाणित होती हैं।

बिजली का प्रकाश सूर्य के प्रकाश के समान न तो व्यापक होता है, न उतना स्पष्ट तथा शुभ होता है और न रात के दूषित वातावरण को निर्दोष बना सकता है इस कारण बिजली के प्रकाश द्वारा भी रात्रि समय पैदा होने वाले सूक्ष्म कीटाणु भोज्य पदार्थों से दूर नहीं किये जा सकते।

अतः दिन में भोजन बनाना और दिन में ही भोजन करना धार्मिक दृष्टि से तथा शारीरिक दृष्टि से एवं आत्मव्यवहार आदि सामाजिक दृष्टि से भी लाभदायक है। कम से कम अन्न का भोजन तो रात में प्रत्येक व्यक्ति को कभी न करना चाहिए।

रात में भोजन करने वालों को नक्तञ्चर या निशाचर (राक्षस या

...ली (हिंसक जानवर) कहते हैं। मनुष्य को निशाचर न बनना चाहिये।

जल-छानना

मनुष्य को अपने जीवन के लिये वायु के बाद जिस चीज की सबसे अधिक आवश्यकता है वह है जल। भोजन के बिना केवल जल के सहारे मनुष्य कई मास तक जीवित रह सकता है अतः जल बहुत उपयोगी पदार्थ है।

जल में स्वभाव से छोटे त्रस कीटाणु उत्पन्न होते रहते हैं उनमें से कुछ नेत्रों से दिखाई देते हैं कुछ खुर्दबीन से दीख पड़ते हैं। यदि वे कीटाणु पीते समय पेट में चले जावें तो एक तो उन की हिंसा होती दूसरे उनके कारण कई रोग उत्पन्न हुआ करते हैं। नहरुआ रोग तो प्रायः बिना छना हुआ पानी पीने से ही हुआ करता है। इस कारण पानी सदा दोहरे वस्त्र से छना हुआ पीना चाहिये। छने हुए जल को यदि ठण्डा ही रक्खा जावे तो उसमें २ घड़ी (४८ मिनट) पीछे फिर जीव उत्पन्न हो जाते हैं इस कारण पानी जब भी पीया जावे छानकर पीना चाहिये। छने हुए जल में यदि लौंग इलायची चूर्ण करके डाल दिया जावे तो उसमें ६ घंटे तक जीव उत्पन्न नहीं होते। साधारण गर्म किये हुए जल में १२ घंटे तक तथा उबाले हुए जल में २४ घंटे तक जीव उत्पन्न नहीं होने पाते। इस मर्यादा के अनुसार पीने के लिये जल का उपयोग करना चाहिये।

मुजफ्फरनगर के एक गाँव में एक आदमी ने गर्मी के दिनों में रात को लोटे में रक्खा हुआ जल यों ही पी लिया लोटे में बैठा हुआ बिच्छू उसके मुख में चला गया और तालु से चिपट कर उसको डंक मारता रहा जिससे वह मर गया।

मुलतान में मूलचन्द कपूर नामक एक युवक नहर में स्नान करते समय पानी पी गया पानी के साथ छोटा-सा मेंढक भी उसके पेट में

जाकर अटक गया और वहीं बढ़ता रहा। वह मेढक जब कूदता फांदता था तब उसके पेट में बहुत पीड़ा होती थी और उसके गुदा से रक्त भी आता था। बड़े डाक्टर मुलचन्द भी रोग का निदान न कर सके। अन्त में एक्सरे से उसके पेट में कोई वस्तु हुई। पेट का जब आपरेशन किया गया तब साढ़े पांच छटांक का निकला।

इस तरह की अनेक घटनाएं बिना छाना हुआ जल पीने आया करती हैं। अतः पानी को सदा दोहरे कपड़े से छान कर पीना चाहिये। तार की जाली से छाने हुए जल में बाल निकल जाता है, वस्त्र से छानने पर ऐसा नहीं होता।

जल को छानकर उसकी जिवानी (छाने हुए जल के जीव) स्थान पर (कुए बावड़ी नदी में) पहुंचा देनी चाहिये।

बिना छने हुए जल की एक बूंद में एक डाक्टर ने कीटाणुओं चित्र लेकर ६२ हजार जीव गिने हैं। इस महान हिंसा से बचने उपाय केवल एक ही है और वह है कपड़े से छान कर जल पीना।

हमारा शरीर

प्रत्येक मनुष्य तथा पशु पक्षियों को अपने रहने के लिए जिस तरह मकान गुफा घोंसला आदि स्थान की आवश्यकता होती है। उसी तरह संसारी जीव को अपने रहने के लिये शरीर की आवश्यकता है। नाम कर्म के अनुसार अच्छा या बुरा शरीर संसारी जीव को मिलता है।

शरीर के सहारे आत्मा देखता सुनता सूंघता छूता स्वाद लेता, बोलना चलना फिरना तथा अनेक तरह के काम करता है। यदि

र के किसी अंग—आंख कान, नाक जीभ चमड़ा हाथ पर ाइत्यादि हृदय आदि में कोई खराबी आ जाती है तो जीव के देखने, ूंघने बोलने छूने काम करने चलन फिरने सोचने विचारने आदि ाबाधा (विघ्न) आ जाती है।

अतः समुचित खान पान से व्यायाम से तथा अंजन मंजन ा-मालिश आदि से शरीर की तथा शरीर के अंगों की रक्षा करनी हिये। जिससे हमारे किसी काम में बाधा न आवे। सभी सांसारिक ोग व्यापार आदि और सभी पारमार्थिक काय-दर्शन पूजन सामायिक ाध्याय आदि शरीर के सहारे होते हैं इसलिये अपने इस सहचर ुदा साथ देने वाले) विश्वस्त नौकर की ठीक देखभाल रखना सकी रक्षा करना आत्मा का कर्तव्य है। अग्नि पर धूप रात पर ा या गन्दे स्थान पर एवं किसी मल मूत्र पर मल मूत्र न करना चाहिये। पना पेट साफ रखना चाहिये। कोष्ठबद्धता (कब्ज) न होने देना ाहिये।

परन्तु इस शरीर के पालन पोषण संरक्षण में इतना समय भी न हो जाना चाहिये कि इससे अपना हितकारी काम न लिया जावे। इसलिये इस शरीर द्वारा आवश्यक लौकिक काय और दर्शन पूजन स्वाध्याय सामायिक व्रत, तप संयम आदि पारमार्थिक काय भी अवश्य कर लेने चाहिये।

यानी—मनुष्य को अपने शरीर का स्वामी बनकर उससे अपना हित सिद्ध करना चाहिये। शरीर और इन्द्रियों का दास नहीं बनना चाहिये। जो लोग धर्म साधन नहीं करते, व्रत तप संयम नहीं करते वे अपने शरीर और इन्द्रियों के दास (नौकर) होते हैं अपने आत्मा के लिये शरीर को व दुःखदायी बनाते हैं उनके लिये यह शरीर बन्धन बन जाता है उस शरीर से धर्म लाभ नहीं होता।

अभक्ष्य

जो पदार्थ खाने योग्य नही होते उनको 'अभक्ष्य' कहते है समन्तभद्र आचार्य ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार के श्लोकों मे अभक्ष्य पदार्थों को ५ विभागों में विभक्त १—त्रसविघातक २—बहुस्थावरघातक, ३—मादक और ५—अनुपसेव्य।

जिन पदार्थों के खाने से द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चार इन्द्रिय पंचेन्द्रिय यानी—त्रस जीवों का घात (हिंसा) होता है उन पदार्थों खाना त्रसविघातक है। त्रस जीव के शरीर में रक्त (खून) है अत उनका शरीर मांसमयी होता है। तदनुसार मांस, मधु अंडा, बड का फल, पीपल का फल, गूलर अंजीर पीलू (पाकर) अन्तर्मुहूर्त (दोन घण्टे) से पीछे का मक्खन दहीबड़ा आदि पदार्थों त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं इस कारण ये पदार्थ अभक्ष्य होते हैं।

जिन पदार्थों के खाने से अनन्त स्थावर जीवों का घात होता उन पदार्थों का खाना बहुस्थावर घातक है। जिन वनस्पतियों को का प्रकाश (किरण) नही छू पाता ऐसे पृथ्वी के भीतर उत्पन्न वाले पदार्थ कन्द (पृथ्वी मे इधर उधर फैलकर बढने वाले) अरबी अदरक शकरकन्द आदि तथा मूल (जड की तरह पृथ्वी भीतर नीचे का ओर बढने वाली वनस्पति)—गाजर प्याज लहसुन, मूली की जड आदि एक एक बीज मे अनन्त स्थावर जीव होते हैं अत ये अभक्ष्य हैं।

जिन पदार्थों के खाने पीने से बुद्धि भ्रष्ट होती है नशा होता है वे पदार्थ मादक होते हैं। जैसे—शराब अफीम भांग चरस, गांजा महुआ तम्बाकू बीडी सिगरेट आदि पदार्थ इसी श्रेणी मे हैं।

जो पदार्थ अपने शरीर को रोग उत्पन्न करने वाले हो उनको

अनिष्ट कहते हैं। जैसे—हुआ के रोगी को जल, दस्त अतीसार संग्रहणी के रोगी को दूध प्रतिश्याय (नजला) के रोगी को दही, खांसी के रोग वाले को वर्फी निबल पाचन शक्ति वाले को मावा (खोआ) हलवा बादाम आदि गरिष्ठ पदार्थ।

जो पदार्थ अच्छे पुरुषों के सेवन करने योग्य न हों वे अनुपसेव्य हैं। जैसे—गाय का मूत्र आदि।

ओला घोरवडा निसिभोजन बहुबीजा बैंगन, संधान।
बड़ पीपर ऊमर, कठूमर पाकर फल जो होय अजान।।
कन्दमूल माटी विष आमिष मधु माखन अरु मदिरापान।
फल अतितुच्छ तुषार चलितरस ये जिनमत बाईस बखान।।

ये २२ अभक्ष्यों में आ जाते हैं। अभक्ष्य पदार्थ भी इन ५ प्रकार के अभक्ष्यों में आ जाते हैं। धार्मिक व्यक्ति को अपने शरीर की रक्षा के लिये तथा अन्य जीवों की रक्षा के लिये अभक्ष्य पदार्थ नहीं खाने चाहिये।

भोजन

मनुष्य को अपना शरीर स्वस्थ नीरोग रखने के लिये शुद्ध सात्विक भोजन करना चाहिये। अन्न फल मेवा दूध दही घी मानवीय शरीर के लिये अच्छे पौष्टिक पदार्थ हैं। इनको अपनी पाचन शक्ति के अनुसार खाना चाहिये। भोजन शुद्ध बना हुआ हो शुद्ध छना हुआ जल हो तो वह शरीर का हितकारी है। होटल के भोजन में शुद्धता नहीं होती।

भोजन नियत समय पर नियत मात्रा में करना चाहिये जिससे वह ठीक पचकर शरीर को पुष्ट करे। भूख से कम खाना सदा लाभदायक है। भूख से अधिक खाने वाले व्यक्तियों की मृत्यु-संख्या संसार में अधिक है। भूख से कम खाने वाले स्त्री पुरुष प्रायः रोगी नहीं होते।

जहाँ तक हो सके स्वास्थ्य के लिये मास में एक उपवास कर लेना बहुत लाभदायक है।

मांस मनुष्य के लिये प्राकृतिक भोजन नहीं है। जिन जीवों के दांत नोकीले होते हैं, जीभ से चपचप कर पानी पीते हैं, उन सिंह, भेड़िया, बिल्ली, कुत्ता आदि जानवरों का भोजन मांस हो सकता है। मनुष्य के दांत ऐसे नोकीले नहीं होते न वह जीभ से चपचप कर पानी पीता है इसलिये मांस उसके लिये प्राकृतिक (कुदरती) भोजन नहीं है। घी, चना, गेहूं, बादाम आदि में जितना पोषक तत्व होता है, मांस में उनसे बहुत थोड़ा होता है। अतः मांस किसी भी तरह भोज्य नहीं है।

अंडा

अंडा स्त्रियों और पशुओं के गर्भ के बच्चे बनने के समान होता है। उसके पक जाने पर मुर्गी कबूतर आदि जीव उत्पन्न होते हैं। अतः अंडा खाना मांस खाने के समान है। इस कारण अंडा कभी नहीं खाना चाहिये।

चना

चना अच्छा पौष्टिक पदार्थ है। गरीब स्त्री पुरुष भी मूंग चना को भिगोकर ४-५ घंटे पीछे चबाकर खावें तो यह सस्ता सरल भोजन मूल्यवान पौष्टिक पदार्थों के समान शरीर का पोषण करता है।

मिठाइयों पर मक्खियाँ बैठा करती हैं वे अनेक दिन की बासी भी हो जाती हैं तथा वे गरिष्ठ (पचने में भारी) होती हैं इसलिये वे शरीर के लिये हानिकारक होती हैं। अतः जहाँ तक हो सके मिठाइयाँ कम खानी चाहिये।

गाय का धारोष्ण ताजा दूध पीना शरीर के लिये बहुत लाभदायक है।

चाय में कोई पोषक तत्व नहीं होता यह प्रकृति से उष्ण होती है अत चाय पीने की व्यसन नहीं बनाना चाहिये। उसका न पीना अच्छा है यदि न निभ सके तो थोड़ा पाना चाहिये।

बीड़ी सिगरेट

तम्बाकू पीने से फफड़े खराब हो जाते है इससे मुह में कैन्सर हो जाता है। नासूर (कैंसर) भी तम्बाकू (बीड़ी सिगरेट) पीने से होता है। इस कारण बीड़ी सिगरेट का त्याग कर देना आवश्यक है।

भोजन पदार्थों की मर्यादा

आटा बेसन आदि चून की मर्यादा बरसात में ३ दिन की गर्मी में ५ दिन की और शीत ऋतु में ७ दिन की होती है। हर एक ऋतु सामान्यतः अष्टाह्निका से बदली जाती है। छने हुए पानी की मर्यादा १ मुहूर्त अर्थात् २ घड़ी की है। लवणादि तिक्त द्रव्य द्वारा स्पर्श रस गंध वर्ण बदले हुए जल की मर्यादा दो पहर की। अधन सरीखा उष्णजल न होकर साधारण गर्म जल की मर्यादा ४ पहर की। अधन सरीखे गर्म हुए जल की मर्यादा ८ पहर की है। दूध-दुहकर दो घड़ी के पहले पहले गर्म कर लेने से उसकी मर्यादा आठ पहर की है। (कोई-कोई कहते हैं कि दूध ४ पहर में ही बिगड़ जाता है अतएव बिगड़ जाये तो मर्यादा के भीतर भी न पीवें) यदि दूध गर्म नहीं करें तो दो घड़ी के पीछे उसमें जिस पशु का वह दूध हो उसी जाति के सम्मूर्छन असंख्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं। गर्म दूध में जामन देने पर दही की मर्यादा ८ पहर तक है। बिलोते समय यदि छाछ में पानी डाला जाए तो उसकी मर्यादा उसी दिन भर की है। यदि बिलोय पीछे मिलाया जाए तो उस छाछ की मर्यादा केवल एक मुहूर्त की है (क्रि को) बूरे की मर्यादा शीत में एक मास, गर्मी में १५ दिन और बरसात में ७ दिन की है। घी, गुड़ तेल आदि की मर्यादा स्वाद न बिगड़ने

तक है। खिचड़ी कढ़ी तरकारी की मर्यादा दो पहर की है। पू
सीरा रोटी आदि जिनमें पानी का अधिक अंश रहता है उनकी मर्या
४ पहर का है। पुआ पापड़िया खाजा लड्डू घेवर आदि जिनमें प
किञ्चित् अंश रहता है उनकी मर्यादा ८ पहर की है। जिस भोजन
पानी न पड़ा हो जैसे मगद उसकी मर्यादा आटे के बराबर है।
हुए मसाले हल्दी धनिये आदि की मर्यादा आटे के बराबर है।
मिर्ची सारक दाल आदि मिष्ट द्रव्य से मिले हुए दही की मर्यादा दो
की है। गुड़ के साथ दही मिलाकर खाना अभक्ष्य है।

स्तुति

मान्य पूज्य व्यक्ति की प्रशंसा में बढ़ा चढ़ाकर वचन कहना 'स्तुति' है। जैसे दास नौकर अपने स्वामी को अन्नदाता प्राणरक्षक जीवन आधार आदि शब्द कहकर उसकी प्रशंसा करता है।

अर्हन्त भगवान सबसे अधिक पूज्य हैं अतः उनकी प्रशंसा भक्ति के साथ जो विनय भरे शब्द मुख से निकलते हैं उन्हें भगवान की स्तुति कहते हैं।

जैसे अर्हन्त परमात्मा में अनन्त (सीमा रहित बेहद) गुण हैं उन गुणों का वर्णन जीभ के द्वारा नहीं हो सकता उनको बढ़ा चढ़ा कर कहने की बात तो दूर रही उन सबका साधारण कथन भी असम्भव है अतः वास्तव में तो अर्हन्त भगवान् की स्तुति की नहीं जा सकती किन्तु फिर भी भक्तिवश भगवान् के गुणगान में जो भी शब्द मुख से निकलते हैं उसे स्तुति स्तवन स्तोत्र विनती कहते हैं।

स्तुति में वचन-योग पवित्र कार्य में लगा रहता है मानसिक भाव भगवान की ओर आकर्षित होते हैं तथा हाथ जोड़कर नमस्कार करने

आदि भक्ति की क्रिया में शरीर की चेष्टा होती है। इस तरह मन-वचन-काय (तीनों योग) शुभ कार्य में लगे रहते हैं।

भक्त और भगवान

भक्ति करते समय भक्त अपने आपको भगवान का एक विनीत विश्वासी सेवक समझता है अत वह अपने दुःख सकट मेट कर अपने अपने उद्धार की भावना प्रार्थना और याचना भगवान से करता है। उस समय वह दासोऽहं यानी—मैं तेरा दास हूँ इस अवस्था में होता है।

इस के आगे जब उसकी दृष्टि भगवान का गुणगान करते हुए अपनी आत्मा की ओर जाती है उस समय वह थोड़े से अन्तर के साथ अपने आपको भगवान सरीखा समझने लगता है कि जो अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य आदि गुण भगवान में है वे ही गुण मेरी आत्मा में भी हैं अन्तर केवल इतना है कि मेरे गुण कर्म-मल से छिपे हुए हैं विकसित नहीं है और भगवान की आत्मामें उसका पूर्ण विकास हो गया है इसी कारण मैं एक साधारण संसारी आत्मा बना हुआ हूं और भगवान परम-आत्मा हो गये हैं।

ऐसा चिन्तन करते हुए वह अपने लिये सोऽहं की भावना करता है जिसका अभिप्राय उपर्युक्त है। यानी—स (वह परमात्मा) अहम् (मैं हूँ)।

सोऽहं की भावना लेकर जब वह संसार शरीर तथा विषय भोगों से रागभाव त्याग कर विरक्त हो जाता है। एकान्त निर्जन प्रान्त में संसार के समस्त संकल्प विकल्प छोड़कर आत्म साधना में लग जाता है अनेक कष्ट उपद्रवों के आने पर भी अपने ध्येय से विचलित नहीं

द्वारा शरीर की ममता जिसके विलीन हो जाता है आत्म ध्यान में ऐसा लीन होता है कि उसके सिवाय उसकी चित्तवृत्ति अन्यत्र कहीं भी नहीं जाने पाता उस समय उसके नवीन कर्मबन्धन नगण्य (न कुछ) सा हो जाता है और पूर्व संचित अज्ञान कर्म विनष्ट होने लगते हैं, जिससे कि सूक्ष्म राग द्वेष आदि विकार भी हरे भरे नहीं होने पाते, बल्कि सूखे पत्त की तरह स्वयं झड़ जाते हैं।

तब उसकी भावना होती है केवल अहम् (मैं परम शुद्धपूर्ण शुद्ध परमात्मा हूं) उसकी यह भावना कोरी भावना नहीं रहती पूर्ण शुद्ध होकर वह यथार्थ में (सचमुच) 'परमात्मा' बन जाता है।

इस तरह भगवान् का सच्चा भक्त दासोऽहं' से सोऽहं बनता है और सोऽहं से अहम् होकर भगवान् की भक्ति के सहारे अन्त में स्वयं भगवान् बन जाता है।

भगवान् भी वही सच्चा है जो अपने भक्त को अपने समान भगवान् बना दे और भक्त भी वही सच्चा है जो भगवान् की भक्ति के सहारे अन्त में स्वयं भगवान बन जावे।

इसी कारण स्तुतियों में जिनेन्द्र भगवान् को दुःख दूर करने वाला सुख सम्पत्ति, स्वर्ग, मोक्ष देने वाला बतलाया है। और अपने सुख कल्याण के लिये उनसे तरह-तरह की मांगें की हैं।

दूसरी बात यह है कि भक्ति करते समय भक्त पुरुष भगवान् के बहुत निकट अपनी गाढ़ी रागमयी भावना से पहुंच कर अपने आपको भुला-सा देता है उस समय वह कभी अपने आपको भगवान् का विश्वासी चाकर समझ लेता है कभी अपने भीतर पुत्र की और भगवान् में पिता की भावना भर बैठता है कभी वह भगवान् को अपना हित कारी मित्र मान बैठता है और उस धुन में उसका यथार्थ सिद्धान्त की बात ध्यान में नहीं रहती। वह तो भगवान् को सिद्धालय (मोक्ष) में

नही समझता बल्कि बिल्कुल अपने [illegible] हुआ [illegible] है। इस लिये अपना हृदय खोलकर उनसे [illegible] करता है। इसी [illegible] चीत मे अपना सारा रोना धोना [illegible] उनको सुना देता है क्योकि उस समय उसको [illegible] भगवान् के सिवाय अन्य कोई चीज दिखाई नही देता।

महाकवि धनञ्जय भगवान का पूजन कर रहे थे [illegible] पुत्र को सांप ने काट खाया, सांप का विष [illegible] हो गया। यह देख कर उनकी पत्नी घबरा गई। [illegible] पंडित धनञ्जय को इस बात की खबर [illegible] पहुच जाने को कहा। नौकर ने पूजा करते हुए [illegible] दिया। धनञ्जय अपनी पूजा मे लीन थे [illegible] नही दिया उनका उस समय सबसे [illegible] हुआ था।

धनञ्जय जब घर न पहुँचे तब दूसरी बार [illegible] खबर भेजी और तुरन्त आने की प्रार्थना [illegible] को भी इन्होंने अनसुना कर दिया [illegible] हट सका और वे घर पर न पहुँचे।

तब उस पुत्र शोक मे उनकी स्त्री [illegible] और झुंझलाकर उस अचेत पुत्र को [illegible] लाकर उसने पूजा करते हुए धनञ्जय [illegible] और क्रोध के उबाल मे दो चार खरी [illegible] सुना [illegible] उस बेचारी को क्या पता था कि उसका [illegible] हुआ है अपनी तीव्र भावना के कारण [illegible] विचारों से [illegible] दूर पर खड़ा है।

भक्ति में लीन हो गया। उनकी स्त्री तथा मन्दिर में आये हुए अन्य स्त्री पुरुष धनञ्जय की ऐसी भक्ति में लीनता देखकर चकित (हैरान) रह गये।

कवि धनञ्जय ने उसी समय विषापहार स्तोत्र बनाया और स्तवन करते हुए भगवान् से कहने लगे—

विषापहारं मणिमौषधानि,
मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति
पर्यायनामानि तवैव तानि ॥१४॥

दाता—शरीर का विष उतारने के लिये जनता मणि औषधि मन्त्र तन्त्र की खोज में दौड़ती भागती फिरती है उसको यह नहीं मालूम कि ये सब आप के ही दूसरे नाम हैं। यानी—विष उतारने वाले तो सभी कुछ आप हैं।

उनकी पवित्र भावना का यह प्रभाव हुआ कि उनका पुत्र इस तरह उठकर खड़ा हो गया जैसे गहरी नींद से जागा हो धनञ्जय फिर भी भगवान् की स्तुति में लीन रहे और उन्होंने स्तुति के १९ पद्य और भी पढ़कर अपनी भक्ति भावना को समाप्त किया।

ऐसी ही बात श्री मानतुंग आचार्य के साथ हुई, वे बन्दीघर (जेल) में पड़े हुए थे। अन्य उपाय न देखकर उन्होंने वहीं पर प्रभावशाली भक्तामर स्तोत्र की रचना कर डाली। स्तोत्र के ४६ वें पद्य में वे बोले—

आपादकण्ठमुरुशृङ्खल—वेष्टिताङ्गा
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥

यानी—कोई मनुष्य घर में [illegible] कोई मजबूत [illegible] से [illegible] म डाल दिया गया हो और मोह की बेड़ियों से उस बेचारे [illegible] छिन गई हों। किन्तु यदि वह आपका पवित्र नाम का [illegible] [illegible]ण करे तो उसके सब बन्धन स्वयं टूट जाते हैं।

इस श्लोक के पढ़ते ही वे बाहर बिना [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible]न द्वारा बन्दीघर (जेल) से बाहर निकल आए।

वादिराज मुनि को कोढ़ रोग हो गया था। राजसभा में [illegible] एक जैन सभासद (दरबारी) की हँसी उड़ाते हुए राजा [illegible] [illegible] कहा कि इसके गुरु कोढ़ी हैं।

आचार्य वादिराज के भक्त को बहुत बुरा लगा और [illegible] के [illegible] (जोश) में वह कहा कि नहीं मेरे गुरु का शरीर तो [illegible] [illegible] [illegible] निर्मल है। राजा ने कहा कि अच्छा कल [illegible] उनके दर्शन [illegible]रेंगे तब मालूम हो जायगा कि तुम भक्तों में [illegible] [illegible] [illegible] है।

वह जैन सभासद राजसभा से निकल कर [illegible] [illegible] मुनि के पास पहुँचा और राजसभा की सब बात कह सुनाई। [illegible] [illegible] [illegible]गम्भीरता से बोले जाओ घर आराम करो [illegible] [illegible] [illegible] सब ठीक हो जायगा। वह भक्त निज घर चला [illegible]।

रात्रि समय श्री वादिराज आचार्य ने [illegible] [illegible] भगवान् की भक्ति में तन्मय होकर बनाया। चौथा पद [illegible] है—

प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता [illegible]
पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव [illegible]।
ध्यानद्वारं मम रुचिकरं [illegible] [illegible],
तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं [illegible]॥

अर्थात्—हे जिनेन्द्र भगवान्! [illegible] [illegible] [illegible] संसार में आने से पहले ही [illegible] [illegible] पृथ्वी मण्[illegible]

(रत्न वर्षा से) हो गया था, तो ध्यान के द्वारा यदि मैं आपको अपने हृदय में बिठाऊँ तो क्या यह मेरा शरीर सुनहरा नहीं हो जायगा ?।

इस श्लोक के पढ़ते ही वादिराज का कोढ़ दूर हो गया। प्रातः काल राजा ने जब ब्राह्मण मन्त्री और उस जन समाज के साथ वादिराज आचार्य के दर्शन किये तो उन मुनिराज का गात स्वर्ण पाया। इस पर उस ब्राह्मण मन्त्री को राजाने बहुत फटकारा।

इस तरह भक्ति करते समय वीतरागता के सिद्धान्त को भक्ति के आवेश में गौण (पीछे) कर दिया जाता है। प्रायः सभी स्तुतियां उसी भक्ति भावना से बनी हुई हैं। जैन जिनेन्द्र भगवान् को वीतराग (कर्ता हर्ता न) मानते हुये भी उन स्तोत्रों में—

द्रौपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अन्तरयामी॥

इसी प्रकार के भाव स्तुतिकारों ने रख दिये हैं। सबसे प्रथम स्तुतिकार (१८०० वर्ष पहले के स्तुति बनाने की नींव डालने वाले) मुख्य परीक्षाप्रधानी भारत में अपने समय के सर्वोत्कृष्ट तार्किक विद्वान् श्री समन्तभद्र आचार्य ने अपने स्वयम्भूस्तोत्र में भी भक्ति की इसी पद्धति को अपनाया है।

सारांश यह है कि भक्ति के समय भगवान् में अनुराग प्रधान होता है, सिद्धान्त प्रधान नहीं होता। अनुराग के बिना भक्तिभाव पूजन स्तवन विनय नहीं बन पाती।

भक्ति और सिद्धान्त

मुनि आत्मध्यान द्वारा राग द्वेष मोह ममता घृणा क्रोध काम मद अज्ञान आदि विकार भावों से अपने आत्मा को पूर्ण शुद्ध करके जिनेन्द्र भगवान होते हैं इस कारण उनको न किसी से प्रेम होता है न किसी से द्वेष भाव न किसी से वे प्रसन्न होते हैं और न किसी से

करने (जमीन पर डाल देने आदि) से वह दण्डनीय होता वही मूर्ति किसी स्थान पर ठीक रीति से स्थापित कर दी जाती है ? राज पुलिस सेना उसका सिर झुकाकर प्रणाम करती है प्रत्येक अधि कारी उसका सम्मान करता है और यदि कोई व्यक्ति उसका अपमान करे तो उसको दण्ड दिया जाता है ।

यही बात भगवान् की प्रतिमा के विषय में है शिल्पकार द्वारा बनाई गई मूर्ति तब तक पूज्य नहीं होती जब तक कि उसको विधि अनुसार सूर्य आदि मन्त्रों द्वारा प्रतिष्ठित न हो जाय । प्रतिष्ठा होने पहले उस प्रतिमा में पूज्यता नहीं आती । अतः अप्रतिष्ठित मूर्ति नमस्कार पूजन आदि न करना चाहिए ।

चित्र

जिस तरह अप्रतिष्ठित प्रतिमा अपूज्य होती है उसी तरह का वस्त्र, टीन लकड़ी तथा दीवाल पर बनाये गये भगवान का चित्र पूज्य नहीं होता इसलिये ऐसे किसी चित्र को न तो हाथ जोड़ने चाहिये न सिर झुकाकर नमस्कार करना चाहिए न अभिषेक पूजन करना और न अर्घ चढ़ाना चाहिए ।

खंडित प्रतिमा

प्रतिमा का यदि कोई ऐसा अंग भंग होजावे जिससे उसकी वीत राग मुद्रा में अन्तर न पड़े—जैसे कि उंगली का कुछ अंग खंडित हो जावे चरण का अंग टूट जावे (इत्यादि) तो वह प्रतिमा अपूज्य नहीं होती । किन्तु यदि प्रतिमा की ग्रीवा (गरदन) नाक आँख आदि ऐसे प्रभावशाली अंग हो जाय जिससे उसकी वीतराग मुद्रा में अन्तर आ जावे तो वह प्रतिमा पूजनीय नहीं रहती । ऐसी प्रतिमा को अगाध जल वाले नदी समुद्र आदि में विसर्जन कर देना चाहिये ।

मूर्तिपूजा का प्रारम्भ

वीतराग भगवान् की मुक्ति हो जाने पर उनका साक्षात् दर्शन होना असम्भव है अत उनके दर्शन की भावना सफल करने के लिये भगवान् की वीतराग प्रतिमा बनाकर उसके दर्शन पूजन करके अपना चित्त पवित्र करने की प्रथा अनादि समय से है।

इस युग की दृष्टि से सबसे पहले आज से करोडो वर्ष पहले भगवान् ऋषभनाथ के बडे पुत्र आद्य चक्रवर्ती सम्राट भरत ने जिनके नाम से इस देश का नाम 'भारत' रक्खा गया—कैलाश पर्वत पर भगवान् ऋषभनाथ के मुक्त हो जाने के बाद मन्दिरों का निर्माण कराया था और उनमे भूत, भविष्यत तथा वर्तमान काल के २४ २४ तीर्थंकरो की प्रतिमाएं विराजमान की थी। भगवान् ऋषभनाथ के अरहन्त हो जाने के पश्चात् उनकी जीवन मुक्त अवस्था मे भी धर्माराधन के लिये भरत ने मूर्तिनिर्माण कराया था।

मोहनजोदारा (सिन्ध) की पृथ्वी खोदने समय जो साढे पाँच हजार वर्ष पुराना नगर निकला है उसमे प्लेट न० २ की १ ४ ५ न० की सीलों पर नग्न खडे आकार म जैन के चिह्न-सहित भगवान ऋषभनाथ की मूर्ति अंकित है।

खण्डगिरि उदयगिरि (उडीसा) मे हाथी गुफा पर जो महाराजा खारवेल का शिलालेख है उसमे भी मगध के राजा से आदि जिन (भगवान् ऋषभनाथ) की मूर्ति (मगध जीत कर राजा खारवेल द्वारा) वापिस लाने का उल्लेख है। मूर्ति को मगध का पूर्वज राजा तीन सौ वर्ष पहले महाराजा खारवेल के पूर्वजो से छीन कर ले गया था। इस तरह वह मूर्ति ढाई हजार वर्ष से भी पुरानी थी।

तेरपुर (धाराशिव उस्मानाबाद) की गुफाओं मे राजा करिकुण्ड की बनवाई हुई भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ भगवान् महावीर से पहिले

की मौजूद है यह रक्षा भगवान पार्श्वनाथ के तीर्थकाल में हुआ है। इस तरह से भगवान अरहन्त की वीतराग प्रतिमा बनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। जहाँ भी भारत में खुदाई होती है प्रायः वहाँ प्राचीन नग्न अरहन्त भगवान की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।

सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में जो १२ वर्ष का अकाल पड़ा था उस समय उत्तर प्रान्त में रहे मात्र कुछ जैन साधु कपड़े पहनने लगे। अकाल समाप्त हो जाने पर भी उनमें से जब बहुतों ने कपड़ा पहनना छोड़ा तब विक्रम सम्वत् १३६ में श्वेताम्बर मत स्थापित हुआ।

श्वेताम्बर भाई भी विक्रम सं० की ६ वीं शताब्दी तक वीतराग नग्न मूर्ति ही बराबर पूजा करते रहे। उस समय एक प्रतिमा पर अधिकार करने के लिये दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय का परस्पर विवाद हो गया तब से श्वेताम्बर भाइयों ने अपनी श्वेताम्बरीय प्रतिमाओं की अलग पहचान रखने के लिये वीतराग प्रतिमा पर लंगोट का चिह्न बनाना प्रारम्भ कर दिया। बहुत दिनों तक वे ऐसा ही करते रहे। उसके बाद वे मुकुट, हार, मोती आदि भी वीतराग मूर्तियों में बनवाने लगे। उदयपुर के मूर्ति-संग्रहालय में ऐसी श्वेताम्बर मूर्तियाँ हैं

पूज्य

जगत् में आध्यात्मिक सुख शान्ति प्राप्त करने के लिये पूजा आराधना करने योग्य तीन पदार्थ हैं—१ देव २ गुरु ३ शास्त्र।

अर्हन्त सिद्ध भगवान परम शुद्ध परमात्मा हैं, समस्त देव इन्द्र, मनुष्य उनको पूज्य मान कर उनकी [illegible] और सिद्ध परम पूज्य देवाधिदेव हैं। [illegible]

अर्हन्त सिद्ध भगवान की दिव [illegible]

पूज्य [illegible]

संसार [illegible]

त्यागी आत्म शुद्धि में तत्पर आचार्य उपाध्याय और साधु तथा ऐलक क्षुल्लक पूज्य गुरु हैं।

जो सबसे उच्च पद में विराजमान हैं उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। परमेष्ठी ५ हैं—१ अर्हन्त २ सिद्ध ३ आचार्य ४ उपाध्याय ५ सर्व साधु।

ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय इन चार घाति कर्मों का क्षय करके जिनको केवलज्ञान (अनन्त ज्ञान) अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त बल प्राप्त हो जाता है जन्म जरा, (बुढ़ापा), मृत्यु, तृषा (प्यास) क्षुधा (भूख), आश्चर्य (अचम्भा), पीड़ा खेद (थकावट) रोग शोक अहङ्कार मोह भय (निद्रा) चिन्ता, स्वेद (पसीना) राग और द्वेष इनसे मुक्त हो जाते हैं उन शुद्ध, बुद्ध सच्चिदानन्द वीतराग भगवान को 'अर्हन्त भगवान' कहते हैं।

आत्मशुद्धि की अपेक्षा यद्यपि सिद्ध परमेष्ठी का पद ऊँचा है किन्तु जगत् कल्याण अर्हन्त परमेष्ठी द्वारा ही विशेष होता है। क्योंकि उनके दिव्य उपदेश से संसार में धर्म का प्रचार होता है। इस महान उपकार के कारण अर्हन्त परमेष्ठी का नाम सिद्ध परमेष्ठी से प्रथम स्थान पर लिया जाता है।

अर्हन्त हो जाने पर किसी किसी अर्हन्त का उपदेश नहीं होता है, वे मौन रहते हैं अतः उनको 'मूक केवली' कहते हैं। जिन अर्हन्तों का दिव्य उपदेश हुआ करता है उन सब में प्रधान तीर्थंकर होते हैं। वे धर्म मार्ग का उद्धार करते हैं धर्म का जगत् में महान् प्रचार करते हैं।

तीर्थङ्कर

कर्मों की १४८ प्रकृतियों में तीर्थंकर प्रकृति सबसे अधिक शुभ है। जो व्यक्ति समस्त संसार के उद्धार की भावना से कठोर निर्मल तपस्या करता हुआ निम्नलिखित १६ भावनाओं को लिए केवलज्ञानी

या श्रुतज्ञानी के निकट जाता है उस व्यक्ति के तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। करोड़ों मनुष्यों में से किसी विरले मनुष्य को यह सौभाग्य प्राप्त होता है।

१६ भावनाएँ

१ दर्शन विशुद्धि—निर्दोष सम्यग्दर्शन (आत्म श्रद्धा) होना।

२ विनय सम्पन्नता—पूज्य व्यक्तियों तथा रत्नत्रय के लिये विनय भाव (आदर भाव)।

३ शीलव्रतेष्वनतिचार—व्रतों तथा उनके रक्षक शीलों का निर्दोष आचरण।

४ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग—सदा ज्ञान का अभ्यास करना।

५ संवेग—संसार से भय, धर्म तथा धर्म के फल में अनुराग।

६ शक्तितस्त्याग—शक्ति अनुसार दान करना।

७ शक्तितस्तप—शक्ति के अनुसार तप करना।

८ साधु समाधि—समाधि सहित मरण तथा साधुओं का उपसर्ग दूर करना।

९ वैयावृत्य करना—रोगी बाल वृद्ध मुनि की सेवा करना।

१० अर्हन्त भक्ति—अर्हन्त भगवान की भक्ति करना।

११ आचार्य भक्ति—मुनि संघ के नायक आचार्य की भक्ति करना।

१२ बहुश्रुत भक्ति—उपाध्याय की भक्ति करना।

१३ प्रवचन भक्ति—शास्त्र की भक्ति करना।

१४ आवश्यकापरिहाणि—छह आवश्यक क्रियाओं का निर्दोष आचरण।

१५ मार्ग प्रभावना—उपदेश, शंका समाधान, तपस्या आदि से धर्म का प्रभाव कराना।

१६ प्रवचनवात्सल्य—साधर्मी जन से गाढ़ा प्रेम।

इन १६ भावनाओं में से दर्शन विशुद्धि भावना का होना अति आवश्यक है उसके साथ शेष १५ भावनाओं में से १ २ ३ ४ आदि जितनी भी हों या सभी हों तो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हो जाता है।

तीर्थंकर प्रकृति का प्रभाव

तीर्थंकर प्रकृति के प्रभाव से तीर्थंकर होने वाले महान व्यक्ति के माता के गर्भ में आते समय माता को शुभ १६ स्वप्न आते हैं गर्भ में आने से ६ मास पहले देवियाँ माता की सेवा करने लगती हैं। तीर्थंकर के गर्भ में आने के बाद जन्म समय मुनिदीक्षा लेते समय केवल ज्ञान हो जाने पर तथा मोक्ष हो जाने पर देव महान उत्सव करते हैं उन उत्सव में सम्मिलित होने वालों तथा उत्सव को देखने वालों के हृदय में धर्म के फल का प्रभाव अंकित होता है जिससे कि उनमें से अनेकों को सम्यग्दर्शन हो जाता है अनेकों को शुभ कर्मबन्ध आदि आत्मकल्याण प्राप्त होता है। इस कारण तीर्थंकर के गर्भ जन्म तपश्चरण केवल ज्ञान उदय और निर्वाण पर होने वाले देवउत्सवों को कल्याणक कहते हैं।

भरत ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों के पांचों कल्याणक होते हैं किन्तु विदेह क्षेत्र में केवली, श्रुतकेवली की परम्परा सदा चालू रहती है अतः वहाँ जो मनुष्य पूर्वभव से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लेता है उसके पाँच कल्याणक होते हैं। किन्तु कोई व्यक्ति गृहस्थ दशा में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करता है तो उसके तपग्रहण केवलज्ञान उदय और मुक्ति गमन समय के तीन ही कल्याणक होते हैं तथा जो पुरुष मुनि अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करके उसी भव में उसके उदय से तीर्थंकर बनता है उसके ज्ञान और निर्वाण ये दो कल्याणक ही होते हैं यानी—विदेह क्षेत्र में तीन तथा दो कल्याणक वाले भी तीर्थंकर

तीर्थंकर प्रकृति का उदय

यद्यपि तीर्थंकर प्रकृति के प्रभाव से गर्भ में आने से भी ६ म पहले से तीर्थंकर के माता पिता के घर उस नगर में रत्नवर्षा के उत्सव होने लगते हैं जन्म होने पर तथा मुनि दीक्षा के ग्रहण करते समय भी महान उत्सव होते हैं किन्तु उस समय तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं होता है तीर्थंकर प्रकृति का उदय अर्हन्त अवस्था में—केवल ज्ञान हो जाने पर होता है। तीर्थंकर प्रकृति के उदय में तीर्थंकर की इच्छा न होते हुए भी स्वयं उनके सर्वांग मुख से समस्त जीवों का कल्याण करने वाला सत्य मार्ग प्रकट करने वाला, यथार्थ सिद्धान्त के प्रकाशक दिव्य उपदेश होता है जिसे दिव्यध्वनि कहते हैं।

समवशरण

तीर्थंकर के उस दिव्य उपदेश से लाभ लेने के लिये 'समवशरण' नामक महान सुन्दर विशाल सभा मण्डप देवों द्वारा बनाया जाता है उसके बीच में तीर्थंकर का ऊंचा आसन होता है। उसके चारों ओर १२ कक्ष (विशाल कमरे) बने होते हैं उन कक्षों में देव देवियाँ पुरुष स्त्रियाँ साधु साध्वियाँ पशु-पक्षी सुविधा के साथ बैठ कर तीर्थंकर का उपदेश सुनते हैं। तीर्थंकर की वाणी को देव सर्व भाषामय कर देते हैं अतः वहाँ पर बैठे हुए सभी प्राणी उसे अपनी अपनी भाषा में समझ लेते हैं। यहाँ सबको समान रूप से शरण मिलती है किसी प्रकार का छोटे बड़े रंक राजा का भेद भाव नहीं होता इसलिए वह विशाल सभा मण्डप समवशरण कहलाता है।

साधारण केवली

तीर्थंकर के सिवाय अन्य केवल ज्ञानियों के लिये भवन देवों द्वारा केवल गन्धकुटी नामक उच्च आसन बनाया जाता है समवशरण नहीं बनाया जाता। उनका उपदेश बिना समवशरण के होता है।

कोई मूक केवली भी होते हैं जो मौन ही रहते हैं उनका उपदेश नहीं होता है।

पंच परमेष्ठियों के १४३ मूल गुण

अरहन्ता छैयालीसा४६ सिद्धा अट्ठेव ८ सूर छत्तीसा३६।
उवज्झाया पणवीसा२५ साहूण होन्ति अठवीसा२८॥

तीर्थंकरों के ४६ गुण

अन्य मनुष्यों या केवलियों की अपेक्षा तीर्थंकरों में निम्नलिखित ४६ गुण होते हैं।

३४ अतिशय (चमत्कार पूर्ण अद्भुत बातें) ८ प्रातिहार्य ४ प्रकार के गुण (अनन्त चतुष्टय)।

इनमें तीर्थंकरों के १० अतिशय जन्म समय में, १० केवलज्ञान होने पर स्वयं होते हैं और १४ अतिशय देवों द्वारा होते हैं।

जन्म के १० अतिशय

अतिशय रूप सुगन्ध तन नाहिं पसेव निहार।
प्रिय हितवचन अतुल्य बल रुधिर श्वेत आकार॥१॥
लक्षण सहस्र आठ तन समचतुष्क संठान।
वज्रवृषभनाराचयुत, ये जनमत दश जान॥२॥

यानी—१ तीर्थंकर का शरीर अत्यन्त सुन्दर होता है। २ उनके शरीर से सुगन्धि आती है। ३ उनके शरीर में कभी पसीना नहीं आता। ४ उनके शरीर की पाचन शक्ति ऐसी होती है कि जीवन भर उनको मल मूत्र (टट्टी-पेशाब) नहीं होता। ५ उनके वचन बहुत हितकारी मीठे होते हैं। ६ शरीर में अन्य मनुष्यों से अधिक असाधारण बल होता है। ७ उनका रक्त (खून) गाय के दूध के समान सफेद होता है। ८ उनके शरीर में १००८ शुभ चिह्न होते हैं। ९

समचतुरस्र संस्थान के अनुसार उनके शरीर का प्रत्येक अंग और ठीक आकार में सुडौल होता है। १० वज्रऋषभनाराच संहनन के अनुसार उनके शरीर की हड्डी, हड्डियों के जोड़ जोड़ों की कील के समान दृढ़ (मजबूत) होती है।

केवल ज्ञान समय के १० अतिशय

योजन शत इक में सुभिख, गगनगमन मुख चार।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार ॥३॥
सब विद्या ईश्वरपनो, नाहिं बढ़े नख केश।
अनिमिष दृग छाया-रहित, दश केवल के वेश ॥४॥

मानी—१ केवली भगवान के चारों ओर १०० योजन तक सुभिक्ष, (सुकाल) होता है—अकाल नहीं होता। २ केवलज्ञानी भगवान चलते समय पृथ्वी से ऊपर (अधर) चलते हैं। ३ जहां (समवशरण में) रहते हैं वहां उनका एक ही मुख चारों ओर दिखाई देता है। ४ उनके शरीर से किसी भी सूक्ष्म स्थूल जीव का घात नहीं होता। ५ उनपर कोई उपसर्ग (उपद्रव) नहीं होता। ६ केवलज्ञान हो जाने पर उनको न भूख लगती है न वे भोजन करते हैं, अनन्त बल के कारण उनका शरीर दृढ़ बना रहता है। ७ केवल ज्ञान हो जाने के कारण उनको समस्त प्रकार का पूर्ण ज्ञान हो जाता है, कोई भी विद्या ज्ञान अपरिचित (बिना जाना हुआ) नहीं रहता। ८ उनके नाखून और बाल फिर बढ़ते नहीं हैं। ९ उनके नेत्र सदा आधे खुले रहते हैं—पलक झपकते (मिचते) नहीं हैं। १० उनके शरीर की छाया नहीं पड़ती है।

देवों द्वारा होने वाले १४ अतिशय

देव-रचित हैं चारदश, अर्द्ध मागधी भाष।
आपस माहीं मित्रता, निर्मल दिश आकाश ॥२॥
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी काँच समान।
चरणकमल तल कमल है, नभ ते जय जय बान ॥३॥

मन्द सुगन्ध बयारि पुनि गन्धोदक की वृष्टि।
भूमि विषै कण्टक नहीं हर्षमयी सब सृष्टि ॥७॥
धर्मचक्र आगे रहै पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्री अरहन्त के, ये चौंतीस प्रकार ॥८॥

यानी—१ भगवान् की वाणी को मगध देव सब जीवों की भाषा मय कर देते हैं। २ भगवान् के निकट आये हुये जीव शान्त होकर परस्पर प्रेम के साथ बरतते हैं। ३ समस्त दिशायें साफ होती हैं। ४ आकाश स्वच्छ होता है। ५ देव उस स्थान का वायु मण्डल ऐसा निर्मल कर देते हैं जिसमें विभिन्न ऋतुओं में फलने फूलने वाले वहाँ के सभी वृक्षों पर फल-फूल आ जाते हैं। ६ वहाँ पृथ्वी को दर्पण की तरह स्वच्छ कर देते हैं। ७ चलते समय देव भगवान् के चरणों के नीचे सुवर्णमय कमल के फूल बनाते जाते हैं। ८ देव आकाश में भगवान की जयजयकार करते हैं। ९ सुगन्धित धीमी वायु चलती है। १० सुगन्धित छोटे जलकण (बूँदें) आकाश से गिरते हैं। ११ वहाँ की पृथ्वी पर कांटे कंकड़ आदि चुभने वाले पदार्थ नहीं रहने पाते। १२ चारों ओर हर्ष का वातावरण हो जाता है। १३ सूर्य समान चमकदार धर्मचक्र (पहिये के आकार का पदार्थ भगवान् के पास देव रखते हैं विहार समय देव उसे लेकर भगवान के आगे आगे चलते हैं। १४ छत्र चमर ध्वजा दर्पण स्वस्तिक (साथिया) ठोणा झारी और कलश ये आठ मंगलिक (शुभ) द्रव्य देव भगवान् के निकट रखते हैं।

आठ प्रातिहार्य (द्रव्य महत्वशाली पदार्थ)

तरु अशोक के निकट में सिंहासन छविदार।
तीन छत्र सिर पर लसें भामण्डल पिछवार ॥९॥
दिव्यध्वनि मुखतें खिरै पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढारें चौंसठ चमर जख बाजे दुन्दुभि जोय ॥१०॥

यानी—१ भगवान के निकट अशोक वृक्ष होता है। २ सुन्दर सिंहासन (भगवान उस पर चार अंगुल ऊपर अधर

३ सिर पर तीन छत्र ४ पीठ पीछे भगवान के शरीर की कांति का
पुञ्जरूप भामण्डल । ५ मुख से दिव्यवाणी प्रकट होना । ६ आकाश
से देवों द्वारा फूलों की वर्षा । ७ यक्ष देव भगवान पर ६४ चमर
ढोरते हैं । ८ देव मनोहर सुरीला दुन्दुभि बाजा बजाते हैं ।

अनन्त चतुष्टय

> ज्ञान अनन्त अनन्त सुख दरश अनन्त प्रमान ।
> बल अनन्त अर्हन्त सो इष्ट देव पहचान ॥१॥

यानी—१ अनन्तज्ञान २ अनन्त दर्शन ३ अनन्त सुख और ४
अनन्त बल ।

इन ४६ गुणों में से अनन्त चतुष्टय आदि कुछ गुण अन्य केवलियों
में भी होते हैं ।

तीर्थंकरों के चिह्न

तीर्थंकरों के दाहिने पैर के अंगूठे पर जो चिह्न होता है वही चि
उस तीर्थंकर की ध्वजा आदि में इन्द्र अंकित कर देता है । प्रतिमाओं
पर भी वही चिह्न अंकित होता है । वर्तमान युग के २४ तीर्थंकरों
प्रतिमाओं पर निम्नलिखित चिह्न अंकित किये जाते हैं —

१ श्री ऋषभनाथ—बैल	७ श्री सुपार्श्वनाथ साथिय
२ श्री अजितनाथ—हाथी	८ श्री चन्द्रप्रभ—चन्द्रमा
३ श्री सम्भवनाथ—घोड़ा	९ श्री पुष्पदन्त—मगर
४ श्री अभिनन्दननाथ—बन्दर	१० श्री शीतलनाथ —कल्पवृक्ष
५ श्री सुमतिनाथ—चकवा	११ श्री श्रेयांसनाथ—गैंडा
६ श्री पद्मप्रभ—कमल	१२ श्री वासुपूज्य—भैंसा

१३ श्री विमलनाथ का—सूअर	१९ श्रीमल्लिनाथ—कलश
१४ श्री अनन्तनाथ—सेही	२० श्रीमुनिसुव्रतनाथ—कछुआ
१५ श्री धर्मनाथ—वज्र	२१ श्री नमिनाथ—नीलकमल
१६ श्री शान्तिनाथ—हिरण	२२ श्री नेमिनाथ—शंख
१७ श्री कुन्थुनाथ—बकरा	२३ श्री पार्श्वनाथ—सर्प
१८ श्री अरनाथ—मछली	२४ श्री महावीर—सिंह

इनमें से ऋषभनाथ का दूसरा नाम आदिनाथ तथा पुष्पदन्त का दूसरा नाम सुविधिनाथ और महावीर के दूसरे नाम वर्द्धमान, सन्मति, वीर और अतिवीर हैं।

सिद्ध परमेष्ठी

समस्त (आठों) कर्म नष्ट हो जाने पर जो पूर्ण आत्म सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त कर लेते हैं वे 'सिद्ध' परमेष्ठी होते हैं। आठ कर्म नष्ट होने से उनमें आठ गुण प्रकट होते हैं।

समकित दरसन ज्ञान अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्ष्म वीरजवान निराबाध गुण सिद्ध के ॥१२॥

१ सम्यक्त्व (मोहनीय कर्म नष्ट होने से क्षायिक सम्यक्त्व) २ दर्शन (दर्शनावरण कर्म नष्ट होने से अनन्त दर्शन) ३ ज्ञान (ज्ञानावरण कर्म नष्ट होने से अनन्तज्ञान) ४ वीर्य (अन्तराय कर्म के क्षय से अनन्त बल) ५ सूक्ष्मत्व (नाम कर्म के नाश से सूक्ष्मता) ६ अगुरुलघु (गोत्र कर्म के अभाव से उच्चता नीचता का अभाव) ७ अवगाहन (आयु कर्म के न रहने से अवगाहन गुण) ८ अव्याबाध (वेदनीयकर्म न रहने से अव्याबाध गुण)।

आचार्य

मुनि-संघ के नायक मुनि दीक्षा देने वाले मुनियों को प्रायश्चित्त देने वाले आचार्य परमेष्ठी हैं। उनमें अन्य मुनियों के २८ मूल गुणों के सिवाय निम्नलिखित ३६ गुण और विशेष होते हैं।

द्वादश तप दश धर्मजुत, पालैं पंचाचार।
षट् आवश्यक त्रिगुप्ति गुण, आचारज पदसार॥१३॥

१२ तप १० धर्म ५ आचार ३ गुप्ति और ६ आवश्यक ये ३६ विशेष गुण आचार्य परमेष्ठी के होते हैं।

१२ तप

अनशन ऊनोदर करैं, व्रतसंख्या रस छोर।
विविक्त शयनासन धरैं, कायक्लेश सुठौर॥१४॥
प्रायश्चित्त धरि विनयजुत, वैयावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचार कै, धरैं ध्यान मन लाय॥१५॥

१ अनशन (चारों प्रकार के भोजन को त्याग करके उपवास करना) २ ऊनोदर या अवमौदर्य (भूख से कम खाना) ३ व्रत परिसंख्यान (भोजन ग्रहण करने के लिए घर दाता आदि का नियम करना) ४ रस परित्याग (दूध, दही घी तेल नमक खांड (मीठा) इन छः रसों में से किसी एक दो आदि या सब रसों का छोड़ना), ५ विविक्त शय्यासन (एकान्त स्थान में रहना सोना) ६ कायक्लेश (खड़े होकर ध्यान करना) ये छः बहिरंग तप हैं।

७ प्रायश्चित्त (चारित्र आदि में लगे हुए दोषों का दण्ड लेना) ८ विनय (रत्नत्रय तथा उसके धारक संयमी का आदर विनय करना) ९ वैयावृत्य (रोगी बाल वृद्ध मुनि की सेवा करना) १० स्वाध्याय (शास्त्रों का पठन-पाठन करना) ११ व्युत्सर्ग (चित्त एकाग्र करके आत्मचिंतन करना) ये छः अंतरंग तप हैं।

१० धर्म

छमा मार्दव आर्जव सत्यवचन चितपाग।
संयम तप त्यागी सरब आकिंचन तिय त्याग॥१६॥

१ क्षमा (क्रोध का त्याग) २ मार्दव (अभिमान का त्याग), ३ आर्जव (छल कपट का त्याग) ४ शौच (लोभ का त्याग) ५ सत्य

६ संयम (इन्द्रिय, मन का वश करना [illegible]) ७ तप (१२ प्रकार के तप करना—इच्छाओं का निरोध करना) ८ त्याग (अभय ज्ञान आदि का दान करना) ९ आकिंचन (सब ममता भाव का त्याग), ब्रह्मचर्य (१८ हजार प्रकार का शील धारण करना)।

५ आचार, ३ गुप्ति

दर्शन ज्ञान चारित्र तप वीरज पंचाचार।
रोकें मन वच काय को, गुप्तित्रय गणधार ॥१०॥

१ दर्शनाचार (निर्मल सम्यग्ज्ञान), २ ज्ञानाचार (निर्मल ज्ञान का अवधारण) ३ चारित्राचार (निर्मल चरित्र का आचरण) ४ तपाचार (बारह तपस्या करना) ५ वीर्याचार (उपसर्ग परिषह सहने व उपसर्ग सहन करने की क्षमता) ये पांच आचार हैं।

१ मन गुप्ति (मन में बुरे संकल्प विकल्प न करना) २ वचन गुप्ति (मौन रखना), ३ काय गुप्ति (शरीर [illegible] करना) ये तीन गुप्ति हैं।

समता धरि वन्दन करें नाना थुति बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्याय जुत कायोत्सर्ग लगाय ॥११॥

१ सामायिक (समस्त पदार्थों में [illegible] मे आत्मचिन्तन) २ वन्दना (पंच परमेष्ठी को वन्दन) ३ स्तुति (पंच परमेष्ठी का वचन द्वारा स्तवन), ४ प्रतिक्रमण [illegible] का पश्चाताप करना) ५ स्वाध्याय ([illegible] करना) ६ कायोत्सर्ग (खड़े होकर ध्यान करना) [illegible] छह आवश्यक कार्य हैं। ये ३६ गुण आचार्य [illegible] की अपेक्षा विशेष होते हैं। २८ मूलगुण [illegible] हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी

मुनि संघ में सबसे अधिक ज्ञानी, [illegible]

उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं। ११ अंग १४ पूर्व (महान् शास्त्रों का) ज्ञान रूप २५ गुण उपाध्याय परमेष्ठी के हैं।

११ अंग

प्रथमहि आचारांग गनि, दूजो सूत्रकृतांग ।
ठाण अंग तीजो सुभग, चौथा समवायांग ॥१९॥
व्याख्याप्रज्ञप्ति पांचमो, ज्ञातृकथा षट आन ।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तःकृत दश ठान ॥२०॥
अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान ।
बहुरि प्रश्नव्याकरणजुत, ग्यारह अंग प्रमान ॥२१॥

१ आचारांग २ सूत्रकृतांग ३ स्थानांग ४ समवायांग ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति ६ ज्ञातृकथा ७ उपासकाध्ययन ८ अन्तःकृतदशांग ९ अनुत्तरोत्पादक दशांग १० सूत्रविपाक और ११ प्रश्न व्याकरण, ये ग्यारह अंग शास्त्र हैं।

१४ पूर्व

उत्पादपूर्व अग्रायणी तीजा वीरजवाद ।
अस्तिनास्तिपरवाद पुनि, पंचम ज्ञानप्रवाद ॥२२॥
छठे कर्मप्रवाद है, सत्प्रवाद पहिचान ।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि नवमो प्रत्याख्यान ॥२३॥
विद्यानुवाद पूरब दशम, पूर्व कल्याण महन्त ।
प्राणवाद किरिया बहुल लोकबिन्दु है अन्त ॥२४॥

१ उत्पादपूर्व २ अग्रायणी ३ वीर्यवाद, ४ अस्तिनास्ति प्रवाद ५ ज्ञान प्रवाद ६ कर्म प्रवाद ७ सत् प्रवाद ८ आत्म प्रवाद ९ प्रत्याख्यान १० विद्यानुवाद ११ कल्याण पूर्व १२ प्राणवाद १३ क्रिया विशाल, १४ लोक बिन्दुसार ये १४ पूर्वों के नाम हैं। इ
११ अंगों १४ पूर्वों में भिन्न भिन्न विषयों का विस्तार से विवेचन है
११ अंग १४ पूर्वों का पूर्ण ज्ञान श्रुत-केवली को होता है।

साधु परमेष्ठी

समस्त आरम्भ परिग्रह त्याग कर २८ मूल गुण पालन करने वाले साधु परमेष्ठी हैं।

२८ मूल गुण

५ महाव्रत ५ समिति ५ इन्द्रिय दमन ६ आवश्यक ७ शेषगुण।

५ महाव्रत

हिंसा अनृत तस्करी अब्रह्म परिग्रह पाप।
त्यागें मन वच काय से, पंच महाव्रत धार॥१॥

१ अहिंसा महाव्रत (त्रस स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग) २ सत्य महाव्रत ३ अचौर्य महाव्रत (बिना दिये [illegible] [illegible]लना), ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत (स्त्री मात्र [illegible] का त्याग)। ५ परिग्रह त्याग महाव्रत (अन्तरंग बाहिरंग [illegible]) [illegible]।

५ समिति

ईर्या भाषा एषणा पुनि क्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापना युत क्रिया, पांचों समिति [illegible]॥२॥

१ ईर्या (चार हाथ आगे की भूमि [illegible]) २ भाषा समिति (हितकारी प्रिय वचन [illegible]) ३ एषणा ([illegible] भोजन करना) ४ आदान निक्षेपण ([illegible] [illegible] कर उठाना रखना) ५ प्रतिष्ठापना ([illegible] मूत्र [illegible] जीव रहित स्थान पर करना) ये पांच [illegible]।

५ इन्द्रिय दमन ६ आवश्यक [illegible]

सपरस रसना नासिका [illegible] [illegible]।
[illegible] आवश्यक ६ [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] गुण में [illegible]

१ स्पर्शन (त्वचा चमड़ा) २ रसना (जीभ) ३ नासिका (नाक) ४ नेत्र (आंख) ५ श्रोत्र (कान) इन पांचों इन्द्रियों को वश करना। १ सामायिक २ वंदना ३ स्तुति ४ प्रतिक्रमण ५ स्वाध्याय ६ कायोत्सर्ग, ये छह आवश्यक हैं इनका अभिप्राय आचार्य परमेष्ठी के गुणों में छह आवश्यकों के अनुसार है।

१ स्नान का त्याग (कभी स्नान नहीं करते—यदि कभी अशुचि पदार्थ का स्पर्श हो जाय तो निश्चल खड़े होकर कमण्डल का पानी सिर पर से डाल लेते हैं) २ भूमि पर सोना (पलंग बिस्तर पर नहीं सोते जमीन शिला तख्त पर एक करवट से सोते हैं) ४ केश लोंच (सिर मूंछ दाढ़ी के बालों को अपने हाथों से उपाड़ते हैं—कभी छुरा आदि से नहीं बनवाते), ५ एक बार थोड़ा भोजन ६ दातुन नहीं करते ७ खड़े होकर भोजन करना। इस तरह सब २८ मूल गुण साधु महाराज के होते हैं।

— o —

मन्दिर क्या है ?

तीर्थंकर जब अर्हन्त (वीतराग सर्वज्ञ) हो जाते हैं उस समय उनका दिव्य उपदेश कराने के लिये देवों द्वारा समवशरण नामक एक बहुत विशाल और बहुत सुन्दर सभा मण्डप बनाया जाता है। उस समवशरण के बीच में दिव्य सिंहासन पर (उससे चार अंगुल ऊँचे अधर) भगवान बैठकर उपदेश देते हैं। इन्द्र भक्तिवश उनके सिर पर तीन छत्र लगाते हैं चमर ढोरते हैं मंगलिक बाजे बजाते हैं उनकी पीठ के पीछे भामण्डल होता है। प्रायः उसी के अनुकूल (नकल) रूप में मन्दिर बनाया जाता है। वीतराग प्रतिमा को विराजमान करने के लिये सिंहासन तथा उसके ऊपर छत्र पीछे भामण्डल चमर आदि की योजना की जाती है।

अर्हन्त प्रतिमा बनाने की विधि के अनुसार [illegible] चमर (ढोरते हुए दोनों ओर यक्ष), भामण्डल आदि अष्ट प्रातिहार्य प्रतिमा के साथ ही उसी धातु के बनने चाहियें जैसा कि प्राचीन प्रतिमाओं के साथ अनेकों स्थानों पर हैं। उस दशा में अलग सिंहासन आदि की आवश्यकता नहीं रहती। जिन प्रतिमाओं के साथ ढोरे हुए [illegible] आदि नहीं होते उनके लिये छत्र चमर भामण्डल सिंहासन आदि की व्यवस्था पृथक् कर दी जाती है।

इस तरह मन्दिर समवसरण का [illegible] हुआ अनुकरण है और छत्र चमर भामण्डल आदि प्रातिहार्यों का अनुकरण है। समवसरण का [illegible] महत्व प्रगट करने के लिए तथा [illegible] के ऊपर (छत पर) [illegible] का पद न पड़ने पावे इस अभिप्राय से मन्दिर का ऊँचा शिखर बनाया जाता है। जिससे दूर से देखने से तुरन्त पवित्र स्थान मन्दिर का पता लग जाता है और हृदय में पवित्र भाव उदय होने लगते हैं।

मन्दिर की विनय

परम पूज्य अर्हन्त प्रतिमा के विराजमान होने से मन्दिर एक पवित्र स्थान होता है उसको नव देवताओं (५ परमेष्ठी जिन प्रतिमा जिन मन्दिर जिन वाणी और जिन धर्म) में से एक देवता माना गया है अतः मन्दिर का भी सम्मान करना चाहिए उसको पवित्र रखना चाहिए। जिस तरह तीर्थंकरों मुनियों आदि के तपस्या करने से तथा मुक्त होने के स्थान पवित्र और वन्दनीय तीर्थ स्थान माने जाते हैं उन स्थानों की वन्दना करते समय उन तपस्या तथा [illegible] का चिन्तवन करने से मन पवित्र होता है ठीक वैसी ही बात मन्दिरों के विषय में है। मन्दिर भी भगवान् की मूर्ति तथा जिनवाणी विराजमान होने से पवित्र स्थान हैं आत्मा को पवित्र करने के लिये धर्म-स्थान है। अतः मन्दिर का भी सम्मान विनय करना चाहिये।

मन्दिर का विनय यह है कि स्नान करके, पवित्र वस्त्र पहन कर

वित्र भावना से मन्दिर मे आवें। भगवान के सामने आने से पहले पर ने भी जल से धो लवें। हर्ष और विनय के साथ भीतर प्रवेश कर और वहाँ जब तक रहे भगवान का दर्शन स्तवन, पूजन, सामायिक स्वाध्याय आदि धार्मिक काय करते रहें जब अपनी सुविधा (फुरसत) समय के अनुसार इन धर्म कार्यों को कर चुके तब मन्दिर के बाहर आवें। शान्ति के साथ वहाँ से चले आवें।

मन्दिर मे घर गृहस्थाश्रम की चर्चा करना किसी व्यक्ति की निन्दा तमाशा करना असत्य बोलना चोरी करना किसी स्त्री-पुरुष को बुरी से देखना, व्यर्थ बकवाद करना, थूकना भोजन करना, खेलना आदि काय कभी न करने चाहियें। ऐसे काम करने से बहुत पाप-बन्ध होता है। धर्म साधन के लिये मन्दिर म आये हुये अन्य स्त्री पुरुषों को लाभ होता है अत मन्दिर की पवित्रता सुरक्षित रखने के लिये म कोई अनुचित काम न करनी चाहिए।

अकृत्रिम चैत्यालय

जगत् म बहुत से ऐसे मन्दिर भी हैं जिनको किसी मनुष्य ने नहीं बनाया अनादि समय से चले आ रहे हैं। उनको 'अकृत्रिम चैत्यालय कहते हैं। उन अकृत्रिम चैत्यालयों म अर्हन्त भगवान की बहुत मनोहर प्रतिमाएं विराजमान हैं। किसी तीर्थंकर विशेष की प्रतिमाएं नहीं हैं।

दर्शन की विधि

भगवान के सामने जाते ही भक्ति विनय के साथ हाथ जोड़ कर सिर झुकावें णमोकार मन्त्र पढ़कर कोई स्तुति स्तोत्र का कोई श्लोक पढ़ कर हाथ म लाये हुए चावल चढ़ावें। फिर पृथ्वी पर अष्टांग

(लेटकर) अथवा पंचांग (घुटने के बल बैठ कर दो पैर दो हाथ सिर पांच अंग) नमस्कार करें यानी—घुटने के बल बैठकर जुड़े हुए हाथों को तथा मस्तक को पृथ्वी से लगावें—धोक देवे। दो हाथ, दो पैर, छाती, सिर, कमर और पीठ अंग माने गये हैं। अष्टांग नमस्कार में इन सभी अंगों को झुकाकर नमस्कार किया जाता है।

प्रदक्षिणा

धोक देने के बाद हाथ जोड़कर खड़ा हो जावे और मधुर स्वर में शुद्ध उच्चारण के साथ संस्कृत भाषा का या हिन्दी का स्तोत्र पढ़ता हुआ अपनी बांयी ओर से चलकर वेदी की चारों ओर तीन प्रदक्षिणा करना है। तदनन्तर स्तोत्र पूरा कर लेने पर फिर पंचांग या अष्टांग नमस्कार पूर्वक धोक देवे।

ध्यान रखने योग्य बातें

ध्यान करते समय अपनी दृष्टि (निगाह) [illegible] पर ही रखे अन्य कोई वस्तु न देखे। उस समय [illegible] ऐसा तन्मय हो जावे कि मन वचन काय से [illegible] पावे। भगवान की मूर्ति को एकटक होकर देखें, [illegible] जैसी भगवान की आकृति (मूर्ति) है वैसी ही [illegible] आत्मा में प्रकट हो। जैसे भगवान सिंहासन [illegible] रहते हुए भी उससे निर्लिप्त (अछूते) रहे [illegible] विभूति होते हुए भी उससे अलिप्त रहे। [illegible] उनका न कोई मित्र था न कोई शत्रु [illegible] भाव [illegible] आपके ही हृदय में [illegible] चिन्तवन करे।

परिक्रमा देते समय यदि कोई स्त्री पुरुष [illegible] हो तो [illegible] आगे से न निकले [illegible] उठे तब तक खड़ा रहे आगे न बढ़े।

दर्शन करते समय इस तरह खड़े होना या परिक्रमा करनी चाहिये जिससे दूसरे व्यक्तियों को दर्शन पूजन में विघ्न न पड़े।

दर्शन कर लेने के बाद भगवान के अभिषेक का गन्धोदक अपने हाथ की अगुलियों को गन्धोदक के पास रक्खे अन्य जल में डुबाकर शुद्ध कर लेने पर उगलियों से (गन्धोदक) लेकर अपने सिर, मस्तक नेत्र, गर्दन छाती आदि उत्तम अंगों पर लगाने और फिर गन्धोदक वाली उगलियों को पास में रक्खे जल में डुबाकर धो लेवे जिससे पवित्र गन्धोदक वाली उगलियों का सम्पर्क किसी अन्य अपवित्र पदार्थ से न होने पावे। भगवान के अभिषेक का जल गन्धोदक या प्रक्षाल जल कहा जाता है।

चावल

भगवान के सामने खाली हाथ न आना चाहिए कम से कम चावल चढ़ाने के लिये हाथ में अवश्य लाना चाहिये। चावल चढ़ाने का अभिप्राय यह है कि जिस तरह धान से छिलका उतर जाने पर फिर धान में उगने की शक्ति नहीं रहती इसी प्रकार भगवान के दर्शन भक्ति करने से मेरी आत्मा भी संसार में उगने वाली—फिर जन्म लेने योग्य न रहे।

प्रदक्षिणा

भगवान की गन्ध कुटी समवशरण के बीच में होती है और पूर्वमुख होते हुए भी भगवान का मुख दवी अतिशय के कारण चारों ओर दिखाई देता है अतः दर्शन करने वाले स्त्री-पुरुष भगवान के चारों ओर परिक्रमा देकर उनके चारों ओर दिखाई देने वाले मुख
है। वैसा ही अनुकरण मन्दिर में वेदी की प्रदक्षिणा
है। मन वचन, काय तीनों योगों
प्रदक्षिणा दी जाती हैं।

सूर्य सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा बायीं ओर से घूम कर करता है उसी के अनुरूप प्रदक्षिणा करना चाहिए। भगवान का दाहिना भाग भी पहिले तभी आ सकता है जब कि हम अपने बायीं ओर से प्रदक्षिणा दें। दाहिना भाग अधिक शुभ माना जाता है क्योंकि आशीर्वाद देने शान्ति स्थापित करने उपदेश देने आदि किसी भी शुभ कार्य करने में दाहिना हाथ ही उठता है।

गन्धोदक

तीर्थंकर के शरीर में जन्म से ही सुगन्ध आती है अतः उनके शरीर का प्रक्षालित जल (अभिषेक का जल) भी सुगन्धित होता है इसी कारण प्रक्षाल को गन्ध+उदक—गन्धोदक यानी—सुगन्धित जल कहते हैं। जैसे गुरु की चरण रज को मस्तक से लगाने पर मन में गुरु का गौरव जाग्रत होता है इसी प्रकार भगवान का अभिषेक जल—गन्धोदक अपने उत्तम (नाभि के ऊपर के) अंगों से लगाने पर भगवान में भक्तिभाव जाग्रत होता है।

गन्धोदक लगाते समय पढ़ना चाहिये।

निर्मलं निर्मलीकरणं पवित्रं पापनाशकम्।
जिनगन्धोदकं वन्दे अष्टकर्मविनाशकम्॥

अथवा

निर्मल से निर्मल अति अघनाशक सुखसीर।
वन्दूँ जिन अभिषेक कृत यह गन्धोदक नीर॥

पूजन

अपने चित्त में भगवान् के गुणों को विशेष रूप से मन वचन काय [illegible] स्थिर करने के अभिप्राय से जल चन्दन अक्षत (बिना

टूटे चावल) पुष्प नवद्य, दीप धूप, फल इन द्रव्यों द्वारा पूजन किया जाता है। पूजन करते समय भूख प्यास, मोह अज्ञान, ज्ञानावरण आदि कर्म सांसारिक संताप काम वासना को नष्ट करने अविनश्वर मुक्ति पद प्राप्त करने की पवित्र भावना से जल आदि द्रव्य भगवान् के सामने चढ़ाये जाते हैं।

पूजन का अङ्ग

प्रथम भगवान का शुद्ध जल से 'अभिषेक' करना फिर पुष्प चढ़ाते हुए ठौने में आह्वान (बुलाने की क्रिया—अत्र अवतर अवतर रूप से) फिर स्थापना (अत्र तिष्ठ तिष्ठ रूप से ठौने में पुष्प चढ़ाते हुए भगवान् के स्थापना की क्रिया) तदनंतर सन्निधीकरण (अत्र मम सन्निहितो भव भव कहते हुए हृदय के निकट करने के लिए) ठौने में पुष्प क्षेपण करना होता है।

इतना करने के पीछे अष्ट द्रव्यों को जो पूजन जल आदि द्रव्यों के छन्द पूर्वक ॐ ह्रीं आदि मन्त्रों द्वारा चढ़ाया जाता है, सो पूजन है। समस्त पूजन कर लेने के अनंतर शांतिपाठ पूर्वक ठौने में पुष्प चढ़ाते हुए पूजन की समाप्ति करना विसर्जन है। इस तरह अभिषेक, आह्वान स्थापना सन्निधीकरण पूजा और विसर्जन ये पूजा के अङ्ग हैं।

अङ्ग शुद्धि

पूजन करने के लिये शुद्ध जल से स्नान करके शुद्ध धोती दुपट्टा पहनना चाहिये। अधोवस्त्र (धोती) और उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टा) अलग अलग होना चाहिये। धोती को ही आधा पहना ओढ़ना चाहिये। दुपट्टा सिर पर ओढ़ लेना चाहिए। कुएँ का जल शुद्ध होता है उसको गिराना भी पहुंचाई जा सकता है। अतः पूजन की सामग्री कुएँ के जल से धोनी चाहिये।

दिशा

पूर्व और उत्तर दिशा शुभ मानी गई हैं। सूर्य का उदय पूर्व दिशा में होता है, समवशरण में तीर्थंकर का मुख पूर्व दिशा की ओर होता है, अतः यह दिशा शुभ है। उत्तर दिशा में सुमेरु पर्वत है जिस पर चारों दिशाओं में १६ अकृत्रिम जिनालय हैं, तीर्थंकरों का जन्म अभिषेक भी सुमेरु पर्वत पर होता है। विदेह क्षेत्रों में सदा तीर्थंकर होते हैं वह विदेह क्षेत्र उत्तर दिशा में हैं। इत्यादि कारणों से उत्तर दिशा को शुभ माना जाता है। अतः सामायिक पूजन आदि शुभ कार्य करते समय जहाँ तक हो सके पूर्व या उत्तर दिशा की ओर ईशान मुख रखना चाहिये। वेदी तथा मन्दिर का द्वार भी पूर्व या उत्तर दिशा की ओर रखा जाता है।

भगवान् का मुख यदि पूर्व दिशा की ओर हो तो पूजन करते समय भगवान् के दाहिनी ओर खड़े होने से भक्त-पुजारी का मुख स्वयं उत्तर दिशा की ओर हो जाता है। जहाँ तक हो सके पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके पूजन आदि शुभ कार्य करने चाहिए।

अभिषेक के अनन्तर

अभिषेक कर लेने के पश्चात् अष्ट द्रव्य (जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप, धूप और फल) थाल में सजाकर रखना चाहिये एवं अन्य खाली थाल में केशर चन्दन से स्वस्तिक (सांथिया) बनाकर साथिया चढ़ाने के लिये रखना चाहिये। एक ठौने पर भी स्वस्तिक बनाकर उस ठौने को थाल के आगे रखना चाहिये एक पात्र जल चन्दन चढ़ाने के लिये होना चाहिये।

यह सब कर लेने पर यथावसर मन्त्र पूर्वक स्वस्तिक मंगल विधान (श्रीवृषभो नः स्वस्ति तथा स्वस्तिक्रियाम् परमर्षयो नः, इत्यादि पाठ तक) स्वस्ति मंगल विधान कर लेने पर

शास्त्र गुरु विदेह क्षेत्रस्थ वर्तमान २० तीर्थंकर सिद्ध परमेष्ठी आदि की पूजन प्रारम्भ करने से प्रथम ठौने में उस पूजन सम्बन्धी आह्वान (*पूजन के लिये भक्तिभाव से बुलाने की क्रिया*) स्थापना (*ठौने में स्थापित करने की क्रिया*) करना चाहिये।

प्रतिमा के सम्मुख

जिस किसी तीर्थंकर की पूजा करने की अभिलाषा हो और उस तीर्थंकर की प्रतिमा सामने वेदी में विराजमान हो तब भी आह्वान स्थापना और सन्निधीकरण क्रियाएं अवश्य करना चाहिये क्योंकि पूजन विधान में ये तीनों क्रियायें पूजन की अंग मानी गई हैं। जैसे हम अपने घर में आये हुए अतिथि के सम्मुख आदर प्रदर्शित करते हुए आइये आइये आदि शब्द उच्चारण करते हैं इसी प्रकार सम्मुख विराजमान तीर्थंकर मूर्ति का भी पूजा करते समय भक्ति सूचक क्रिया आह्वान स्थापना सन्निधीकरण करना उचित है।

आह्वान स्थापना सन्निधीकरण करने के पश्चात् अष्ट द्रव्य से पूजा करना चाहिये।

विसर्जन

समस्त पूजायें कर लेने के पश्चात् शान्ति पाठ पढ़ना चाहिये तद नन्तर अन्त में पूजन क्रिया की समाप्ति के अनुरूप पूज्य तीर्थंकर आदि को सम्मान और भक्ति के साथ विदा देने की क्रिया करनी चाहिये। इस क्रिया का नाम विसर्जन (समाप्त करना) ...

कुछ भाइयों का ख्याल है कि
देवताओं को विदा देने का
है। विसर्जन क्रिया पूजा का ...
जाता है विसर्जन भी उन्हीं

शासन देवताओं के ...

कम गया है कि अकृत्रिम चत्यालयों की पूजा का निम्नलिखित पद्य कुछ पुस्तक प्रकाशकों ने निम्नलिखित रूप से अशुद्ध छाप दिया है।

> कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकीगतान्
> वन्दे भावनव्यन्तरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान्।
> सद्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलै,
> नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शान्तये ॥१॥

इस पद्य की दूसरी पंक्ति अशुद्ध है तदनुसार पहली पंक्ति में अकृत्रिम चत्यालयों का उल्लेख करते हुए दूसरी पंक्ति में अप्रासंगिक भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क और कल्पवासी देवों का नाम आ गया है जिससे भ्रम में पड़ कर लोगों ने समझ लिया है कि इस पूजा में चारों प्रकार के संसारी देवों की पूजा भी की जाती है और विसर्जन में इन ही चतुर्निकाय देवों का विसर्जन किया जाता है किन्तु यह धारणा गलत है। आरा की प्राचीन शुद्ध पूजन पाठ की प्रति के अनुसार उक्त पद्य की दूसरी पंक्तियाँ ये हैं—

> वन्दे भावनव्यन्तरद्युतिवरस्वर्गामरावासगान्

इस शुद्ध दूसरी पंक्ति का अर्थ प्रकरण के अनुसार अकृत्रिम चत्यालयों का विवरण देते हुए यों है —

भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिष्क तथा कल्पवासी देवों के (विमानवर्ती) चत्यालयों की वन्दना करता हूँ।

अतः प्रत्येक भाई को अपनी पूजन पुस्तक में अकृत्रिम चत्यालय पूजा की यह पंक्ति सुधार करके विसर्जन का ठीक अभिप्राय पूर्व लिखे अनुसार समझना चाहिये।

पूजा के विषय का विशेष विवरण 'पूजन रत्नाकर' पुस्तक में दिया गया है वहाँ से पढ़ कर ज्ञान करें।

अभिषेक का उद्देश्य

तीर्थंकर के जन्म समय सुमेरु पर्वत पर तीर्थंकर का देवों के द्वारा अभिषेक होता है, किन्तु वह उस रूप में प्रतिष्ठित प्रतिमा का वह जन्म अभिषेक हुआ नहीं और न अर्हन्त हो जाने के बाद तीर्थंकर भगवान् का समवशरण आदि में कहीं कभी किसी के द्वारा अभिषेक होता है। अतः प्रतिमा का अभिषेक तीर्थंकर की किसी घटना का अनुकरण नहीं है। इसी कारण अभिषेक करते समय जन्म कल्याणक की कविता (सहस्र अठोत्तर कलशा प्रभु के सिर ढुर आदि) पढ़ना उचित नहीं। अभिषेक के समय अभिषेक पाठ ही पढ़ना चाहिए। अभिषेक पाठ संस्कृत तथा हिन्दी भाषा का भिन्न भिन्न है।

जिस प्रकार अर्हन्त भगवान् क्षुधा तृषा (भूख प्यास) आदि दोषों से रहित हैं अतः उनको जल दान और नैवेद्य (पकवान पक्वान्न), चढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। पूजन में भक्त पुजारी अपने क्षुधा तथा जन्म मरण आदि दोषों से मुक्त होने के अभिप्राय से उन पदार्थों को भगवान् के सामने चढ़ाता है, भगवान् को खिलाने पिलाने का अभिप्राय अष्ट द्रव्य चढ़ाने में नहीं रक्खा गया है।

इसी प्रकार अर्हन्त भगवान् समस्त मल रहित परम औदारिक शरीर धारक हैं उनका अभिषेक करने से उनका शारीरिक मल दूर नहीं होता न ऐसा किया ही जाता है। किन्तु भक्त भक्तिवश भगवान् के साथ निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिए उनके शरीर का स्पर्श करना चाहता है भक्तिवश उनके चरणों की धूल अपने मस्तक से लगाना चाहता है अपनी भक्ति विषयक इन इच्छाओं को सम्पन्न (पूर्ण) करने के लिये पूजन के अंग रूप में पूजन से पहिले अभिषेक किया जाता है।

अभिषेक को करते समय अभिषेक करने वाले के हृदय में तथा अभिषेक देखने वालों के हृदय में अच्छा भक्तिभाव उत्पन्न होता है।

इसके सिवाय भगवान् के अभिषेक का जल आदि उत्तम अंगों में लगाकर भगवान् के स्पर्श (छूने) की पवित्र इच्छा की आंशिक (किसी अंश में) पूर्ति की जाती है।

अभिषेक के द्वारा भगवान की वीतराग मुद्रा और भी अधिक देदीप्यमान हो उठती है यह बिना चाहा गौण प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता है

अभिषेक पाठ

[श्री पं० हरजसराय कृत]

जय जय भगवंते सदा मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु नमों जोरि जुग पान॥

[चाल पद मंगल]

श्री जिन जग में ऐसो को बुधिवंत जू,
जो तुम गुण वरननि करि पावै अन्त जू।
इन्द्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी
कहि न सकैं तुम गुणगण हे त्रिभुवन धनी॥

अनुपम अमित तुम गुणनि वारिधि ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरैं हम उर कोष में सो अकथ गुणमणि राश है॥
पै निज प्रयोजन सिद्धि की, तुम नाम में ही शक्ति है।
यह चित्त में सरधान यातें, नाम ही में भक्ति है॥

ज्ञानावरणी दर्शन आवरणी भने
कर्म मोहनी अन्तराय चारों हने।
लोकालोक विलोक्यो केवल-ज्ञान में
इन्द्रादिक के मुकुट नये सुरथान में॥

तब इन्द्र जान्यो अवधितैं उठि सुरन युत वन्दत भयो
तुम पुण्य को प्रेर्यो हरी ह्वै मुदित धनपति सों चयो।
अब वेगि जाय रचो समवसृति सफल सुरपद को करो,
साक्षात श्री अरहन्त के दर्शन करो कल्मष हरो॥२॥

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपती
चल आयो तत्काल मोद धारे अति।
वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयो
दे प्रदच्छिना बार बार वन्दत भयो॥

अति भक्ति भीनो नम्र चित ह्वै समवशरण रच्यो सही,
ताकी अनूपम शुभगती को कहन समरथ कोउ नहीं।
प्राकार तोरण सभामण्डप कनक मणिमय छाजहीं
नगजड़ित गन्धकुटी मनोहर मध्य भाग विराजहीं॥३॥

सिंहासन तामध्य बन्यो अद्भुत दिपै
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै।
तीन छत्र सिर शोभित चौसठ चमर जी
महा भक्तियुत ढोरत चमर तहँ अमर जी॥

प्रभु तरनतारन कमल ऊपर अन्तरीक्ष विराजिया
यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया।
मुनि आदि द्वादश सभा के भवि जीव मस्तक नायकैं
बहु भाँति बारम्बार पूजैं नमैं गुणगण गायकैं॥४॥

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही
क्षुधा तृषा चिन्ता भय गद दूषण नहीं।
जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसे
राग रोष निद्रा मद मोह सब खसे॥

श्रम बिना श्रम-जल रहित पावन अमल ज्योति स्वरूपजी
शरणागतन की अशुचिता हरि करत विमल अनूप जी।

ऐसे प्रभु की शान्त मुद्रा को न्हवन जलसूं करैं
जस भक्तिवश मन उक्ति तैं हम भानुढिग दीपक धरैं ।

तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो ।
मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यो
महा मलिन तन में वसु विधि वश दुख सह्यो ॥

बीत्यो अनन्तो काल यह मेरी अशुचिता ना गई
तिस अशुचिताहर एक तुम ही भरहु बांछा चित ठई ।
अब अष्ट कर्म विनाश सब मल रोष रागादिक हरो
तनरूप कारागेह तैं उद्धार शिव वासा करो ॥६॥

मैं जानत तुम अष्ट कर्म हरि शिव गये
आवागमन—विमुक्त रागवर्जित भये ।
पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही
नय प्रमान तैं जानि महा साता लही ॥

पापाचरण तजि न्हवन करता चित्त में ऐसे धरूं
साक्षात् श्री अरहन्त का मानो न्हवन परसन करूं ।
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबंध तैं
विधि अशुभ नसि शुभ बंध तैं ह्वै शर्म सब विधि-नाश तैं ॥७॥

पावन मेरे नयन भये तुम दरस तैं
पावन पानि भये तुम चरनन परस तैं ।
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यान तैं
पावन रसना मानी तुम गुण गान तैं ।

पावन भई परजाय मेरी भयो मैं पूरण धनी
मैं शक्ति पूर्वक भक्ति कीनी पूर्ण भक्ति नहीं बनी ।
धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिवघर की धरी
भरि क्षीरसागर आदि जल मणिकुम्भ भरि भक्ति करी ॥८॥

विघन सघन वन दाहन-दहन प्रचण्ड हो
मोह महातम दलन प्रबल मारतण्ड हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश आदि संज्ञा धरो,
जग विजयी जमराज नाश ताको करो॥

आनन्द करण दुख निवारण परम मंगलमय सही,
मोसो पतित नहिं और तुम सो पतिततार सुन्यो नहीं।
चिन्तामणी पारस कल्पतरु एक भव सुखकार ही
तुम भक्ति नौका जे चढ़ ते भये भवदधि पार जी॥९॥

तुम भवदधि ते तर गये भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्ति को हमें उतारो पार॥१०॥

दर्शन के समय क्या पढ़े ?

भगवान् की वेदी के सामने जाते हुए प्रथम ही निम्नलिखित णमोकार मन्त्र उच्चारण करें—

ॐ जय जय जय नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

(इस नमस्कार मन्त्र में प्राकृत भाषा में पूर्वोक्त पांच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है।) नमस्कार मन्त्र पढ़ कर नीचे लिखे वाक्य पढ़ें।

एसो पंच णमो यारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं॥

[मानी—यह पाँच परमेष्ठियों को नमस्कार रूप मन्त्र सब पापों का नाश करने वाला है और समस्त मंगलों में पहला मंगल रूप है।]

चत्तारि मंगलं अरहन्ता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू मंगलं केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरहन्ता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंते सरणं पव्वज्जामि सिद्धे सरणं पव्वज्जामि साहू सरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

(इन वाक्यों में संसार में सबसे अधिक मंगल यानी शुभ सबसे अधिक उत्तम और संसार में शरण यानी आश्रय रूप—

१ अरहन्त २ सिद्ध ३ साधु और ४ जैन धर्म को बताया है। चत्तारि मंगलं=चार पदार्थ मंगलीक हैं। अरहन्ता मंगलं=अर्हन्त भगवान् मंगल रूप हैं। सिद्धा मंगलं=सिद्ध भगवान मंगलीक हैं। साहू मंगलं=साधु परमेष्ठी मङ्गल रूप हैं। केवलिपण्णत्तो धम्मो मङ्गलं=केवली भगवान् का उपदेश किया गया धर्म मङ्गलमय है। चत्तारि लोगुत्तमा=जगत् में चार पदार्थ उत्तम यानी सबसे श्रेष्ठ हैं। अरहन्ता लोगुत्तमा=अर्हन्त भगवान् लोक में उत्तम है। सिद्धा लोगुत्तमा=सिद्ध भगवान् जगत् में सबसे श्रेष्ठ हैं। साहू लोगुत्तमा=साधु परमेष्ठी लोक में उत्तम हैं। केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो=केवली भगवान का उपदिष्ट धर्म इस जगत् में उत्तम है। चत्तारी सरणं पव्वज्जामि=मैं चार पदार्थों की शरण लेता हूँ। अरहन्ते सरणं पव्वज्जामि=अरहन्त भगवान् की शरण लेता हूँ। सिद्धे सरणं पव्वज्जामि=सिद्ध परमेष्ठी की शरण लेता हूँ। साहू सरणं पव्वज्जामि=मैं साधु परमेष्ठी की शरण लेता हूँ। केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि=मैं केवली भगवान् से उपदिष्ट धर्म की शरण लेता हूँ। फिर नीचे लिखा छन्द पढ़ें।

ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन सुमति पद्म सुपार्श्वजिनराय
चन्द्र पहुप शीतल श्रेयांस नमि वासुपूज्य पूजित सुरराय॥
विमल अनन्त धर्म जस उज्ज्वल शांति कुंथु अरि मल्लि मनाय
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय॥

इतना पढ़कर भगवान के आगे पावम पद्धा कर धोक दे। तदनन्तर पठनीय स्तोत्रों में से कोई एक अथवा संस्कृत भाषा का भक्तामर आदि जो भी स्तोत्र याद हो पढ़ता हुआ भगवान् की प्रदक्षिणा दे।

शास्त्रजी को नमस्कार करने की कविता

वीर हिमाचल तें निकसी गुरु गौतम के मुख-कुण्ड ढरी है।
मोह महाचल भेद चली जग की जड़तातप दूर करी है॥
ज्ञान पयोनिधि माँहि रली, बहु भंग तरंगनि सौं उछरी है।
ता शुचि शारद गंगनदी प्रति मैं अंजुलिकर सीस धरी है॥१॥
या जग मन्दिर में अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी।
श्रीजिनकी धुनि दीप शिखासम जो नहिं होत प्रकाशनहारी॥
तो किस भाँति पदारथ पाँति कहाँ लहते? रहते अविचारी।
या विधि संत कहैं धनि है धनि है जिन-बैन बड़े उपकारी॥२॥

जिन-वाणी के ज्ञान से, सूझै लोकालोक।
सो वाणी मस्तक चढ़ो सदा देत हूँ धोक॥

बारह भावना भूधरदासकृत

दोहा—राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार॥१॥
दल बल देई देवता मात पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को कोऊ न राखनहार॥२॥
दाम बिना निर्धन दुखी तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में सब जग देखो छान॥३॥
आप अकेला अवतरे मरे अकेला होय।
यों कबहूँ या जीव को साथी सगा न कोय॥४॥
जहाँ देह अपनी नहीं तहाँ न अपना कोय।
घर-सम्पति पर प्रकट है पर हैं परिजन-लोय॥५॥

दिप चाम चादर मढ़ी, हाड पींजरा देह ।
भीतर या सम जगत में और नहीं घिन गेह ॥६॥

सोरठा मोह-नींद के जोर जगवासी घूमें सदा ।
कर्म चोर चहु ओर सरवस लूटें सुध नहीं ॥७॥
सतगुरु देय जगाय मोह नींद जब उपशमें ।
तब कछु बने उपाय कर्म चोर आवत रुकें ॥८॥

दोहा—ज्ञान-दीप तप-तेल भर घर शोध भ्रम छोर ।
या विधि बिन निकसें नहीं बैठे पूरव चोर ॥९॥
पंचमहाव्रत संचरण समिति पंच प्रकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय धार निर्जरा सार ॥१०॥
चौदह राजु उतंग नभ लोक पुरुष संठान ।
तामें जीव अनादि तें भरमत हैं बिन ज्ञान ॥११॥
धन कन कंचन राज-सुख सबहि सुलभ कर जान ।
दुर्लभ हैं संसार में एक यथारथ ज्ञान ॥१२॥
जाचे सुरतरु देय सुख चिन्तत चिन्तारैन ।
बिन जाचे बिन चिन्तये धर्म सकल सुख दैन ॥१३॥

— • —

५० बुधजन कृत स्तुति

प्रभु पतितपावन मैं अपावन चरण आयो शरण जी ।
यो विरद आप निहार स्वामी मेटि जामन मरण जी ॥
तुम ना पिछान्यो आन मान्यो देव विविध प्रकार जी ।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥१॥
भव विकट वन में कर्म बैरी ज्ञान धन मेरो हरो ।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय अनिष्ट गति धरतो फिरो ॥
धनि घड़ी यह धनि दिवस ये ही धनि जनम मेरो भयो ।
अब भाग्य मेरो उदय आयो दरश प्रभु को लखि लयो ॥२॥

छवि वीतरागी नग्न मुद्रा दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुणयुत, कोटि रवि की छवि हरैं॥
मिटि गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरा उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसा भया मनु, रंक चिन्तामणि लयो॥३॥
मैं हाथ जोडि नवाऊं मस्तक वीनऊँ तुव चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन सुनो तारण तरण जी॥
याचूं नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथ जी।
बुध याचहूं तुम भक्ति भव भव दीजिए शिवनाथ जी॥४॥

प० द्यानतराय रचित पार्श्वनाथस्तवन

नरेन्द्र फणीन्द्र सुरेन्द्र अधीश शतेन्द्र सुपूजैं नवैं नाय शीश।
मुनीन्द्र गणीन्द्र नमैं जोड़ हाथ नमो देव देव सदा पार्श्वनाथ॥
गजेन्द्र मृगेन्द्र गह्यो तू छुड़ावै महा आग तैं नाग तैं तू बचावै।
महावीर तैं युद्ध में तू जितावै, महा रोग तैं बंध तैं तू छुड़ावै॥
दुखी दुःख हर्ता सुखी सुक्ख कर्ता, सदा सेवकों को महानन्द भर्ता।
हरे यक्ष राक्षस भूत पिशाच महाडाकिनी विघ्नके भय अवाच॥
दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने अपुत्रीन कों तू भले पुत्र कीने।
महासंकटों से निकारै विधाता सबै संपदा सब को देहि दाता॥
महाचोरको वज्र को भय निवारै महापौनके पुञ्ज तैं तू उबारै।
महाक्रोधकी अग्नि को मेघधारा महालोभ शैलेशको वज्र मारा॥
महामोह अंधेर को ज्ञानभान
महाकर्म कांतार को दव प्रधान।
किये नाग नागिन अधोलोक स्वामी
हरो मान तू दैत्य को हो अकामी॥
तुही कल्पवृक्ष तुही कामधेनु तुही दिव्य चिंतामणि नाग एनं।
पशू नरक के दुःख तें तू छुड़ावै महास्वर्ग में मुक्ति में तू बसावै॥
करै लोह को हेम पाषाण नामी,
रटै नाम सो क्यों न हो मुक्तिगामी।

कर सेव ताकी करें देव सेवा सुन वच सो ही लहै ज्ञान मेवा ॥
जप जाप ताको नहीं पाप लागे धर ध्यान ताके सबै दोष भागे ।
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे तुम्हारी कृपा तें सरें काज मेरे ॥
गणधर इन्द्र न कर सकें तुम विनती भगवान् ।
'द्यानत' प्रीति निहारि कें कीजे आप समान ॥

सामायिक

संसार के समस्त पदार्थों के साथ यहाँ तक कि अपने शरीर से भी मोह, ममता दूर करने के लिए अथवा किसी से द्वेष घृणा मिटाने के अभिप्राय से जो मन के विचारों को आत्म की ओर सन्मुख किया जाता है उसे सामायिक कहते हैं।

आत्मा को राग द्वेष आदि विकार भावों से शुद्ध करने के लिये सब से अच्छा साधन यह आत्मध्यान या सामायिक ही है। इस कारण प्रतिदिन कुछ न कुछ समय तक सामायिक अवश्य करनी चाहिए।

सामायिक की विधि

जहां पर कोई पशु पक्षी स्त्री-पुरुष बच्चे आदि अपने शब्द या अन्य किसी चेष्टा से मन को विशेष विचलित करने वाले न हों वा स्थान शांत हो कोलाहल तथा उपद्रव से रहित हो ऐसे स्थान पर सामायिक करनी चाहिये।

सामायिक करने से पहले अपने वस्त्र सिर के बाल आदि ठीक कर लेने चाहिये जिससे सामायिक करते समय वायु से उड़कर या गिरते हुए वे चित्त को विचलित करने का कारण न बन सकें।

सबसे पहले पूर्व दिशा की ओर अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख कर के खड़ा होकर नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ फिर पृथ्वी पर बैठ कर

धोक देवे तदनन्तर उसी स्थान पर फिर खड़े होकर तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़े उसके बाद हाथ जोड़ कर तीन आवर्त (जुड़े हुए हाथों को बायीं ओर से गोल रूप में तीन बार पूरा घुमाना) और एक शिरोनति (जुड़े हुए हाथों पर मस्तक लगा कर नमस्कार) करे। इतना कर लेने पर दाहिने हाथ की ओर घूम जावे उधर भी तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करे। फिर दाहिनी ओर घूमकर तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़कर तीन आवर्त एवं शिरोनति करे तदनन्तर फिर दाहिनी ओर घूम कर चौथी दिशा की ओर मुख करके तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़े और तीन आवर्त एवं शिरोनति करे। इतना कर लेने पर दाहिनी ओर घूमकर उसी पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की ओर—जिधर धोक दी थी—मुख कर बैठ करके या खड़ा होकर सामायिक करे।

सामायिक करने के प्रारम्भ में यह नियम कर लेना चाहिए कि जब तक सामायिक समाप्त न हो जायगी तब तक चाहे जैसा विघ्न या उपद्रव आवे मैं अपने स्थान से नहीं हटूंगा न अपने विचारों में हिंसा झूठ चोरी काम सेवन या परिग्रह की मोह ममता के भाव आने दूंगा सामायिक सम्बन्धी पाठ मन्त्र आदि उच्चारण के सिवाय अन्य कुछ न बोलूंगा और पद्मासन या खड्गासन से अडिग रहूंगा यानी शरीर से कोई चेष्टा नहीं करूंगा। ऐसा दृढ़ संकल्प करके सामायिक करनी चाहिये।

सामायिक में क्या करे

सामायिक करते समय मन को बाहरी विचारों से हटा करके आत्मा की ओर लगाने के लिये अर्हन्त सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप चिंतवन करे किसी वीतराग मूर्ति का विचार करे बारह भावनाओं में आत्मा के शुद्ध स्वरूप को विचारने में मन को लगावे कि मैं शुद्ध चैतन्य निर्विकार हूं यह शरीर तथा पुत्र मित्र स्त्री धन मकान आदि कोई वस्तु भी वस्तु मेरी नहीं है संसार के सभी पदार्थ अपने अपने रूप में परिणत

हा रहे हैं उनके उन परिणमनों का न तो मैं अपने अनुरूप कर सकता हूँ और न मैं उन जैसा हो सकता हूँ इस कारण दूसरे पदार्थ न मुझे कुछ हानि लाभ दे सकते हैं और न मैं वास्तव में किसी का कुछ बिगाड़, सुधार कर सकता हूँ। अतः संसार में न मेरा कोई मित्र है न कोई शत्रु मैं अखंड सुख का भण्डार तथा पूर्ण ज्ञान पिण्ड हूँ। राग द्वेष काम, क्रोध मोह, माया अहंकार ममकार लोभ तृष्णा मेरे शुद्ध भाव नहीं हैं, ये तो कर्मों के विकार से हो जाते हैं। मैं निरंजन निर्विकार शुद्ध सच्चिदानन्द रूप हूँ। क्षमा सन्तोष सत्य शौच ब्रह्मचर्य त्याग तप शान्ति निर्मलता मेरे गुण हैं जो अर्हन्त सिद्ध परमेष्ठी में गुण हैं वे ही मुझ में भी हैं। राग द्वेष छोड़कर यदि मैं भी कुछ प्रयत्न करूं तो पूर्ण ज्ञानी वीतराग बन सकता हूँ अजर अमर परमात्मा हो सकता हूँ आदि।

ऐसा विचार करें विरक्ति लाने के लिये बारह भावना पढ़े किसी मन्त्र का जाप करे। यानी —उस समय अपने मन को सांसारिक राग द्वेष मोह ममता के विचारों से दूर रखे।

यह सब कुछ कर लेने पर उसी स्थान पर खड़ा हो कर नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ कर धोक दे। इस तरह सामायिक समाप्त करे।

जपने का मन्त्र

णमोकार मन्त्र सब मन्त्रों में श्रेष्ठ है। यदि इस णमोकार मन्त्र को जपा जाय तो सभी विघ्न [illegible] [illegible] इसमें कोई सन्देह नहीं।

शुभ या अशुभ काम करने के १०८ द्वार [illegible]

१ मन (विचार करना), २ वचन (बोलना) ३ काय (शरीर से काम करना)

१ कृत (स्वयं करना) २ कारित (अन्य से कराना) ३ अनुमोदन (किसी के किये हुए की सराहना करना)

१ सरंभ (करने का संकल्प—इरादा करना) २ समारम्भ (काम करने के साधन जोड़ना), ३ आरम्भ (काम को प्रारम्भ या शुरू कर देना)।

ये सब काम १ क्रोध वश किसी को मारने पीटने के लिये किये जावें। अथवा २ अभिमान वश किसी को अपमानित (बेइज्जत) करने के विचार से किये जावें। ३ या मायाचार के रूप में किसी को धोखा देने के इरादे से इनको किया जाता है अथवा—४ लोभवश होकर जीव ऊपर लिखे ढंग को अपनाकर काम करते हैं।

तदनुसार —

१—मन कृत सरंभ (मन में स्वयं किसी काम करने का इरादा किया हो)।

२—मन कृत समारम्भ (मन में स्वयं करने के लिये सामग्री जोड़ने का विचार)

३—मन कृत आरम्भ (मन में किसी काम को स्वयं प्रारम्भ करने का विचार)।

४—मन कारित सरंभ (मन में दूसरे के द्वारा काम करने का विचार)।

५—मन कारित समारम्भ (मन में दूसरे के द्वारा काम कराने की साधन सामग्री का विचार)।

६—मन कारित आरम्भ (मन में अन्य द्वारा काम प्रारम्भ करा देने की भावना)।

७—मन अनुमोदना सरंभ (मन में अन्य के किये गए काम पर

सराहना करने का इरादा करना)।

८—मन अनुमोदना समारम्भ (मन में अन्य के काम की सराहना करने के साधन जुटाने की भावना)।

९—मन अनुमोदना आरम्भ (मन में किसी के काम की सराहना कर डालने का विचार)।

१० वचनकृत सरम्भ, ११ वचन कृत समारम्भ, १२ वचन कृत आरम्भ १३ वचन कारित सरम्भ १४ वचन कारित समारम्भ १५ वचन कारित आरम्भ १६ वचन अनुमोदना सरम्भ १७ वचन अनुमोदना समारम्भ १८ वचन अनुमोदना आरम्भ।

इसी प्रकार—

१९ शरीर कृत सरम्भ २० शरीर कृत समारम्भ २१ शरीर कृत आरम्भ २२ शरीर कारित सरम्भ २३ शरीर कारित समारम्भ २४ शरीर कारित आरम्भ २५ शरीर अनुमोदना सरम्भ २६ शरीर अनुमोदना समारम्भ और २७ शरीर अनुमोदना आरम्भ।

२७ प्रकार काय करने के ढंग क्रोध के कारण होते हैं।

२७ प्रकार के काय मान के कारण होते हैं।

२७ प्रकार में माया (छल कपट) द्वारा किये जाते हैं।

२७ प्रकार से ही लोभ द्वारा भी काय करने में आते हैं।

इस कारण सब मिलकर काय करने के ढंग १०८ प्रकार के हैं। इन १०८ प्रकारों से किये गये पाप कार्यों से छुटकारा पाने के विचार से जाप की माला में १०८ दाने रखे गये हैं।

स्वाध्याय

ज्ञान तो प्रत्येक जीव में मौजूद है किन्तु वह ज्ञानावरण कर्म से छिपा हुआ है पूर्ण विकसित नहीं है। उस छिपे हुए ज्ञान को विकसित

करने के लिये स्वाध्याय एक सबसे सफल साधन है। हमारे पूज्य विद्वान् ऋषियों ने तथा अनेक गृहस्थ विद्वानों ने जिनवाणी को शास्त्रों में लिखकर रख दिया है। उन शास्त्रों का पढ़ना-सुनना, मनन करना, चर्चा करना, शंका समाधान करना, दूसरों को पढ़ाना, समझाना आदि सब स्वाध्याय कहलाता है।

शास्त्रों के चार विभाग किये गये हैं

१—प्रथमानुयोग—जिन ग्रन्थों में तीर्थंकरों आदि त्रेसठ शलाका पुरुषों (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ये ६३ शलाका यानी गणनीय पुरुष हैं), ऋषियों, पुण्यात्मा मोक्षगामी महान् पुरुषों का जीवन चरित्र हो वे ग्रन्थ प्रथमानुयोग के हैं। जैसे—आदि पुराण, उत्तर पुराण, पद्मपुराण, हरिवंश पुराण, शान्तिनाथ चारित्र, प्रद्युम्नचारित्र, जीवन्धर आदि।

प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में कथा के साथ साथ यथा-अवसर धर्म नीति, उपदेश, चरित्र का कथन, द्रव्य, तत्व, गुणस्थान, लोकाकाश आदि का विवरण भी होता है। इस कारण प्रथमानुयोग में जहां सुन्दर सरल मनोरंजक कथा होती है वहां शेष तीनों अनुयोगों के विषय भी आ जाते हैं।

२—करणानुयोग—करण का अर्थ गणित, लोक, करन का विवरण भी लिया है—तदनुसार जिन ग्रन्थों में त्रिलोक का, काल परिवर्तन का तथा गणित सूत्रों का विवरण हो वे करणानुयोग के ग्रन्थ हैं जैसे तिलोय पण्णत्ति, त्रिलोकसार आदि।

करण शब्द का दूसरा अर्थ जीव के परिणाम लिया गया है—तदनुसार जिन ग्रन्थों में जीवों के परिणामों का, गुणस्थान आदि का विषय हो वे भी करणानुयोग के ग्रन्थ हैं जैसे—गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि।

३— चरणानुयोग—जिनमे मुनिधर्म तथा गृहस्थ के आचार का वर्णन हो —जैसे मूलाचार आचारसार रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि।

४ द्रव्यानुयोग—जिनमे या मे छह द्रव्यों पञ्च अस्तिकायो गुण पर्यायो सात तत्त्व ६ पदार्थों आदि का दार्शनिक कथन होवे वे द्रव्यानुयोग के ग्रंथ है जैसे—समयसार प्रवचनसार पंचास्तिकाय द्रव्यसग्रह आदि।

इनमे से अपनी अपनी रुचि के अनुसार ग्रंथो का स्वाध्याय करना चाहिये। चारो अनुयोगो का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जिन्हें कुछ भी शास्त्रीय ज्ञान न हो स्वाध्याय का प्रारम्भ ही कर रहे हो, उनको पद्मपुराण आदि पुराण आदि सरल प्रथमानुयोग के ग्रंथो का स्वाध्याय शुरू करना चाहिये। उसी के साथ आत्मानुशासन पद्मनन्दि पंचविंशतिका ज्ञानार्णव सुभाषित रत्नसन्दोह स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि कोई उपदेश ग्रंथ भी रखना चाहिये। इन ग्रंथो का स्वाध्याय कर लेने पर हरिवंश पुराण, रत्नकरण्ड श्रावकाचार (प० सदासुखजी की बड़ी टीका) मोक्षमार्ग प्रकाशक आदि ग्रंथो का स्वाध्याय करना आवश्यक है।

सारांश यह है कि क्रमशः ज्ञान उपार्जन तत्त्वज्ञान होने पर कठिन कठिन ग्रंथो का स्वाध्याय करते रहना चाहिये।

वैयक्तिक स्वाध्याय

स्वाध्याय यदि अकेले रूप से किया जाय तब तो स्वाध्याय वाले ग्रंथ का ही मंगलाचरण पढ़कर उस ग्रंथ का स्वाध्याय प्रारम्भ करना चाहिये और साथ में एक नोट बुक रखनी चाहिये। शास्त्र की जो बात समझ में न आवे उसका ग्रंथ का नाम और पत्र नम्बर सहित नोट बुक (पाकिट बुक) में लिख लेना चाहिये जिससे कि कभी अवसर मिलते ही किसी विशेष ज्ञानी विद्वान से उसको पूछ कर उसको समझ में न आई हुई बात को समझ लिया जावे।

शास्त्र सभा

प्रत्येक मन्दिर में प्रातः या रात्रि को कम से कम एक बार शास्त्र सभा अवश्य होनी चाहिये जिसमें अपने यहाँ का विशेष जानकार व्यक्ति शास्त्र पढ़े और सब स्त्री पुरुष उसको शान्ति के साथ सुनें। शास्त्र-सभा की परम्परा बहुत लाभदायक है अतः शास्त्र सभा की प्रणाली जहाँ न हो वहाँ पर अवश्य चालू कर देना चाहिये। स्त्रियों की अलग शास्त्र सभा भी आवश्यकतानुसार होती रहे वह भी लाभदायक है।

ॐकार पाठ

शास्त्र सभा में शास्त्र पढ़ने के पहिले नीचे लिखा ॐकारपाठ पढ़ना चाहिये।

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् ॥२॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

परमगुरवे नमः परम्पराचार्य श्रीगुरुभ्यो नमः। सकलकलुषविध्वंसक श्रेयसां परिवर्धक पुण्यप्रकाशक पापप्रणाशक मिदं शास्त्रं श्री (यहाँ पर जिस ग्रंथ को पढ़ा जा रहा हो उस ग्रंथ का नाम कहना चाहिये) नामधेयं। अस्य मूल ग्रंथकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवाः तदुत्तरग्रंथकर्तारः श्रीगणधरदेवाः। तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्री (यहाँ पर ग्रंथ बनाने वाले आचार्य का नाम कहना चाहिये यदि ग्रंथ बनाने वाला कोई भट्टारक या या गृहस्थ विद्वान् हो तो आचार्य श्री के स्थान पर भट्टारक श्री कहकर या पण्डित श्री कहकर उसका नाम बोलना चाहिये) विरचितं। श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

अष्टमी और चतुर्दशी तो पर्व दिन हैं ही इसके सिवाय ['अष्टाह्निका कार्तिक फाल्गुन और आषाढ़ मास के अन्तिम आठ दिन, दशलक्षण [भाद्रपद सुदी ५ से १४ तक के १० दिन] षोडशकारण [भाद्रपद माघ तथा चैत्र बदी १ से ३० दिन] 'रत्नत्रय' [भादों, माघ, चैत्र सुदी १३ से १५ तक तीन दिन] दीपावली [कार्तिक बदी अमावस] वीर शासन जयन्ती [श्रावण बदी प्रतिपदा] 'रक्षाबन्धन [श्रावण सुदी १५ और श्रुतपंचमी [ज्येष्ठ सुदी ५] ऋषभ जयन्ती [माघ बदी १४] व महावीर जयन्ती [चैत्र सुदी १३] ये जैनसमाज के प्रसिद्ध पर्व दिन हैं।

दश लक्षण धर्म

स्वर्ण में जब तक तांबा लोहा आदि अन्य धातुओं का मेल बना रहता है तब तक उस मिलावटी स्वर्ण पर न तो सुन्दर चमक आती है और न उसका मूल्य बढ़ता है। उसी प्रकार जब तक आत्मा के साथ पुद्गल द्रव्य का मिश्रण बना रहता है तब तक आत्मा की स्वच्छ आभा प्रकट नहीं होने पाती और न उसकी अनन्त शक्तियाँ पूर्ण विकसित हो पाती हैं। कर्मों के संयोग से महान् ऐश्वर्यशाली भी आत्मा दीनहीन, दुखी अज्ञानी पतित बना रहता है।

आत्मा के दुखदायी कर्म मल को दूर करने के लिए दश उपाय बतलाये गये हैं जिनको शास्त्रीय भाषा में 'दशलक्षणधर्म' कहते हैं। प्रत्येक आत्मप्रेमी को दशधर्म की रूपरेखा समझ लेना तथा उसका यथासम्भव आचरण करना आवश्यक है। अतः क्रमशः संक्षेप से उन दस धर्मों का विवरण यहाँ देते हैं —

१ क्षमा—सहनशील शक्ति का नाम 'क्षमा' है। क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही क्षमा है।

२ मार्दव—आत्मा का कोमल परिणमन 'मार्दव' है। अभिमान पर विजय प्राप्त करने से मार्दव गुण प्रकट होता है।

३ आर्जव—मन वचन-काय की क्रिया की एकरूपता को आर्जव कहते हैं। छल कपट न करने से यह गुण प्राप्त होता है।

४ सत्य—झूठ न बोलना ही सत्य है। जिससे किसी भी आत्मा दुखित हो ऐसा सत्य भी नहीं कहना चाहिये।

५ शौच—हृदय की पवित्रता का नाम शौच धर्म है। लोभ न करना ही शौच धर्म कहलाता है।

६ संयम—इन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त करना ही संयम है।

७ तप—इच्छाओं का रोकना ही तप है।

८ त्याग—स्व अनुग्रह (संवर निर्जरा) तथा अन्य प्राणी के संकट दूर करने के लिए जो द्रव्य का दान किया जाता है वह त्याग है।

९ आकिंचन्य—आत्मा के निज गुणों के सिवाय-जगत् के सभी पदार्थों में राग भाव न रखना ही आकिंचन्य है।

१० ब्रह्मचर्य—कामवासना पर विजय प्राप्त करना ही ब्रह्मचर्य है।

व्रत नियम

मनुष्य को अपना जीवन शान्त सुखी एवं सात्विक धार्मिक बनाने के लिये न तो अपने शरीर का दास (गुलाम) बनना चाहिये न इन्द्रियों का दास बनना चाहिये और न विषय भोगों का कीड़ा बनना चाहिये। इसके लिये उसे इन्द्रिय विजयी बनकर यथासमय यथासम्भव व्रत नियम अवश्य ग्रहण करने चाहिये।

स्पर्शन इन्द्रिय विजय—अपनी पत्नी के साथ भी गुणी सच्चरित्र विद्वान् सन्तान उत्पन्न करने की भावना से काम सेवन करना चाहिये। गर्भाधान हो जाने के पश्चात् ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये। रजस्वला के दिनों में ब्रह्मचर्य रखना आवश्यक है। अष्टान्हिका पर्व के समय काम सेवन का त्याग होना चाहिए। अष्टमी चतुर्दशी

दशलक्षण अष्टाह्निका आदि विशेष धर्माचरण के दिनों में ब्रह्मचर्य रखना चाहिये। ५० वर्ष की आयु हो जाने पर ब्रह्मचर्य व्रत ले लेना चाहिये। किसी भी बच्चे-बच्ची को अबोध समझ कर उसके सामने कामक्रीडा नहीं करनी चाहिये।

इस प्रकार के ब्रह्मचर्य पालन करने से धर्मआचरण होता है गर्मी (उपदंश) रोग नहीं होता (जो कि रजस्वला के समय काम सेवन से प्राय होता है)। राजयक्ष्मा (टी बी) रोग नहीं होता तथा घर के बाल-बच्चों मे दुराचार की भावना नहीं आती और पति-पत्नी का शरीर स्वस्थ बलवान रहता है।

पुरुष के वीर्य की प्रत्येक बूंद में तथा वीर्य समान स्त्री की धातु की प्रत्येक बूंद मे जीवन के क्षण और शरीर की पुष्टता विद्यमान है अत अपने जीवन को दीर्घजीवी स्वस्थ और बलवान बनाने के लिये अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य का आचरण करना चाहिये।

रसना इन्द्रिय की विजय—असभ्य परदुखदायक अपमानकारक मर्मभेदी विश्वासघाती धोखा देने वाले अहितकर वचन न कहना अशुद्ध होटली भोजन न करना चाट पकौडी मिर्च तेज मसाले की वस्तुएँ न खाना, मिठाई खाने का अभ्यास न डालना शुद्ध सात्विक सादा भोजन करना सिद्धान्त विरुद्ध न बोलना भक्ति सूचक उपदेश प्रद स्तोत्र गीत सुरीले स्वर से गाना, हित मित प्रिय शिष्ट सत्य वचन बोलना रसना इन्द्रिय की विजय है।

घ्राणइन्द्रिय की विजय—इत्र फुलेल कपूर अगरबत्ती आदि सूंघने की प्रवृत्ति न डालना घ्राणइन्द्रिय की विजय है।

नेत्र इन्द्रिय की विजय—वेश्यानृत्य तथा कामोत्तेजक चोरी डकैती आदि दुराचार पोषक फिल्मों के देखने का त्याग करना भगवान्

की प्रतिमा का नित्यनियम से दर्शन करना, गुरु दर्शन करना, अच्छे प्रभावशाली दृश्य देखना यह नेत्र इन्द्रिय की विजय है।

कर्ण इन्द्रिय की विजय—गन्दे कामोत्तेजक, कषायवर्द्धक निन्दा जनक, बातों का गाना का न सुनना, प्रतिदिन शास्त्र सुनना, हितकर उपदेश सुनना कर्ण इन्द्रिय की विजय है।

कषायवर्द्धक स्व-पर अहितकारी विचार न करना, विषय वासनाओं के उत्तेजक ग्रन्थ न पढ़ना, किसी का अशुभ चिन्तन न करना, किसी की उन्नति देख ईर्ष्या जलन न करना, विश्व हित की भावना रखना, महात्माओं का स्वाध्याय मनन करना, प्रतिदिन सामायिक करना मन की विजय है।

सदाचार

मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता सदाचार के कारण है। पशुओं में माता बहिन पुत्री आदि का विचार नहीं होता वे सदा हिंसा, काम सेवन आदि पापकार्यों में लिप्त रहते हैं इसी कारण पशुओं को नीच माना जाता है। अतः मनुष्य को अपना जीवन श्रेष्ठ बनाने के लिये सच्चारित्र आचरण करना चाहिए, सच्चारित्र के बिना मनुष्य भव व्यर्थ है।

हिंसा (अन्य जीव को सताना, मारना) असत्य (झूठ बोलना, विश्वासघात करना, धोखा देना, बेईमानी करना), चोरी करना, कुशील (काम सेवन करना) और परिग्रह (अन्याय से धन संचय करना) ये ५ पाप हैं। इनका त्याग करना सदाचार है।

गृहस्थ आश्रम को छोड़ कर साधु (मुनि) बनने वाले महात्मा महाव्रत के रूप में इन पाँचों पापों को पूर्ण रूप से त्याग करते हैं।

दशलक्षण अष्टाह्निका आदि विशेष धर्माचरण के दिनों में ब्रह्मचर्य रखना चाहिये। ६० वर्ष की आयु हो जाने पर ब्रह्मचर्य व्रत ले लेना चाहिये। किसी भी बच्चे-बच्ची को अबोध समझ कर उसके सामने कामक्रीडा नहीं करनी चाहिये।

इस प्रकार के ब्रह्मचर्य पालन करने से धर्मआचरण होता है गर्मी (उपदंश) रोग नहीं होता (जो कि रजस्वला के समय काम सेवन से प्राय होता है)। राजयक्ष्मा (टी बी) रोग नहीं होता तथा घर में बाल बच्चों में दुराचार की भावना नहीं आती और पति पत्नी का शरीर स्वस्थ बलवान रहता है।

पुरुष के वीर्य की प्रत्येक बूंद में तथा वीर्य समान स्त्री की धातु की प्रत्येक बूंद में जीवन के क्षण और शरीर की पुष्टता विद्यमान है अत अपने जीवन को दीर्घजीवी स्वस्थ और बलवान बनाने के लिये अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य का आचरण करना चाहिये।

रसना इन्द्रिय की विजय—असभ्य, परदुखदायक अपमानकारक मर्मभेदी विश्वासघाती धोखा देने वाले अहितकर वचन न कहना अशुद्ध होटली भोजन न करना चाट पकोड़ी मिर्च तेज मसाले की वस्तुयें न खाना मिठाई खाने का अभ्यास न डालना शुद्ध सात्विक सादा भोजन करना सिद्धान्त विरुद्ध न बोलना भक्ति सूचक उपदेश प्रद स्तोत्र गीत सुरीले स्वर से गाना हित मित प्रिय शिष्ट सत्य वचन बोलना रसना इन्द्रिय की विजय है।

घ्राणइन्द्रिय की विजय—इत्र फुलेल कपूर नसवार आदि सूंघने की प्रवृत्ति न डालना घ्राणइन्द्रिय की विजय है।

नेत्र इन्द्रिय की विजय—वेश्यानृत्य तथा कामोत्तेजक चोरी डकैती आदि दुराचार पोषक फिल्मों के देखने का त्याग करना भगवान्

की प्रतिमा का नित्यनियम से दर्शन करना गुरु दर्शन करना अच्छे प्रभावशाली दृश्य देखना यह नेत्र इन्द्रिय की विजय है।

कर्ण इन्द्रिय का विजय—राग, कामोत्तेजक कषायवर्द्धक निन्दा जनक बातों या गीतों का न सुनना प्रतिदिन शास्त्र सुनना शिक्षाप्रद उपदेश सुनना कर्ण इन्द्रिय की विजय है।

कषायवर्द्धक स्व पर अहितकारी विचार न करना विषय वासना के उत्तेजक ग्रन्थ न पढ़ना किसी का अशुभ चिन्तन न करना किसी की उन्नति देख ईर्ष्या जलन न करना विश्व हित की भावना रखना सत्शास्त्रों का स्वाध्याय मनन करना प्रतिदिन सामायिक करना मन की विजय है।

सदाचार

मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता सदाचार के कारण है। पशुओं में माता बहिन पुत्री आदि का विचार नहीं होता वे सदा हिंसा काम सेवन आदि पापकार्यों में लिप्त रहते हैं इसी कारण पशुओं को नीच माना जाता है। अत मनुष्य को अपना जीवन श्रेष्ठ बनाने के लिये सच्चारित्र आचरण करना चाहिये सच्चारित्र के बिना मनुष्य भव व्यर्थ है।

हिंसा (अन्य जीव को सताना, मारना) असत्य (झूठ बोलना विश्वासघात करना धोखा देना बेईमानी करना) चोरी करना कुशील (काम सेवन करना) और परिग्रह (अन्याय से धन संचय करना) ये ५ पाप हैं। इनका त्याग करना सदाचार है।

गृहस्थाश्रम को छोड़ कर साधु (मुनि) बनने वाले महात्मा महाव्रत के रूप में इन पाँचों पापों को पूर्ण रूप से त्याग करते हैं।

सभी जीव जन्तुओं (त्रस तथा स्थावर जीवों) की हिंसा का परित्याग करते हैं रचमात्र भी झूठ नहीं बोलते किसी भी तरह की किसी की वस्तु बिना पूछे नहीं लेते स्त्री मात्र से विषय सेवन के त्यागी होते हैं और अपने पास एक कौड़ी भी नहीं रखते पूरी तरह नग्न होते हैं अत वे अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रत का आचरण करते हैं।

इसके सिवाय ५ समिति, ५ इन्द्रिय दमन ६ आवश्यक इनिष्ट कार्य तथा ७ गौण गुण यानी २३ प्रकार का अन्य सदाचार आचरण करते है, जिनका विवरण पीछे इस पुस्तक मे दिया है। इस तरह मुनि चारित्र मे २८ मूल गुणों का आचरण होता है।

किन्तु गृहस्थाश्रम म रहने वाला मनुष्य पांच पापों का पूरी तरह से त्याग नहीं कर सकता। तदनुसार उसका सदाचार ५ अणुव्रत रूप होता है।

हिंसा के चार भेद हैं १—संकल्पी हिंसा [जान बूझकर किसी की हत्या करना जैसे शिकार खेलना आदि] २—विरोधी हिंसा [शत्रु से अपनी अपने परिवार की किसा दीन निर्बल की मन्दिर आदि धर्मायतन की रक्षा करते हुए शत्रु को मारना] उद्योगी हिंसा [व्यापार खेती कारखाना आदि चलाने म जो क्षुद्र जीव जन्तुओं—चींटी आदि त्रसों की हिंसा अनचाहे भी हुआ करती है] और आरम्भी हिंसा—[रसोई बनाने आदि घर के कार्यों म होनेवाली छोटे जीव जन्तुओं की हिंसा]। इन चार हिंसाओं म से गृहस्थ-स्त्री पुरुष केवल संकल्पी हिंसा का ही त्याग कर सकते हैं अन्य तीन प्रकार की हिंसा को नहीं छोड़ सकते। अतएव संकल्पी त्रस जीवों की हिंसा का त्याग रूप अहिंसा अणुव्रत गृहस्थ का होता है।

इसी तरह गृहस्थ घर व्यापार आदि के व्यवहार कार्यों मे पूर्ण

असत्य बोलने का भी त्याग नहीं कर सकता। अतः राजदण्डनादि कारक भाषण के त्याग रूप गृहस्थ का सत्य अणुव्रत होता है।

जिन जल मिट्टी घास वृक्षों [पत्त फल, फूल] आदि वस्तुओं पर किसी का स्वामित्व [मालिकी] न हो उनको तो गृहस्थ बिना पूछे-भाछे ले सकता है किन्तु उनके सिवाय अन्य कोई किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु बिना पूछे नहीं लेता यह उसका अचौर्य अणुव्रत होता है।

अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय अन्य समस्त स्त्रियों के साथ काम सेवन नहीं करना यह गृहस्थ पुरुष का ब्रह्मचर्य अणुव्रत है तथा स्त्री अपने पति के सिवाय अन्य समस्त पुरुषों से विषय-सेवन का त्याग करना स्त्रियों का ब्रह्मचर्य व्रत है।

गृहस्थाश्रम चलाने के लिये न्याय नीति से व्यापार, उद्योग, खेती, नौकरी आदि करके धन उपार्जन करना और अपनी आवश्यकतानुसार सीमित धन सम्पत्ति रखना गृहस्थ का परिग्रह परिमाण अणुव्रत है।

यह पाँच अणुव्रत गृहस्थ का मूल सदाचार रूप है। प्रत्येक श्रावक स्त्री पुरुष को आचरण करना चाहिए। यद्यपि गृहस्थ श्रावक के अन्य भी व्रत नियम हैं उनके आचरण की ११ श्रेणियाँ [प्रतिमाएं] हैं परन्तु यहाँ संक्षेप में पाँच अणुव्रतों का ही वर्णन किया है।

अभिवन्दन करने की पद्धति

[१] श्रावक मुनि के लिए नमोस्तु कहे।

[२] बदले में मुनि उत्तम त्रिवर्ण-श्रावक को 'धर्मवृद्धि' साधारण [सामान्य] पुरुषों को 'धर्मलाभ' और शूद्रों को 'पापक्षयोऽस्तु' कहे।

[३] ब्रह्मचारी को श्रावक वन्दना कहे।

[४] ब्रह्मचारी वर्ग्ग में श्रावक को 'पुण्यवृद्धि' अथवा 'दर्शनविशुद्धि' कहें।

[५] श्रावक आर्यिका को वंदामि कहें।

[६] आर्यिका भी श्रावक को धर्मवृद्धि और सामान्य पुरुषों को धर्मलाभ कहें।

[७] व्रती श्रावक अर्थात् गृहधर्मी आपस में 'इच्छाकार' करें।

[८] शेष जन मात्र आपस में जयजिनेन्द्र कहें।

[९] इसके सिवाय और पुरुषों के प्रति उनकी योग्यतानुसार यथा योग्य विनय करना चाहिए।

[१०] गृहस्थ अपने लौकिक व्यवहार में बड़ों को नमस्कार करें।

[११] विद्या तप और गुणों से श्रेष्ठ पुरुष अवस्था में कम होते हुए भी ज्येष्ठ [बड़ा] माना जाता है।

[१२] सूत्र पाहुड में ग्यारहवीं प्रतिमाधारी के उत्कृष्ट श्रावकों को इच्छाकार करना लिखा है अर्थात् मैं आप सरीखा होने की इच्छा करता हूँ।

[१३] ग्यारहवीं प्रतिमावाले आपस में 'इच्छामि' कहें।

यहाँ पर व्रती स्त्री पुरुष को श्रावक और शेष सबको सामान्य गृहस्थ समझना चाहिए।

दुर्व्यसन

मनुष्य को जो बुरी आदतें पड़ जाती हैं वे दुर्व्यसन हैं। वे सात प्रकार के हैं १—जुआ खेलना २—मांस खाना ३—मदिरापान, ४—वेश्यासेवन करना ५—शिकार खेलना ६—चोरी करना और ७—पर स्त्री सेवन करना।

बिना परिश्रम के धनिक बन जाने की धुन में मनुष्य अनेक प्रकार का जुआ खेलते हैं उस जुआ में जब कभी जीत जाना सरल है उसी तरह उसमें हार जाना भी सरल है। इस कारण जुआ बड़ा भयानक खेल है। कौरवों तक का हार जाने वाले पांडव तथा नल राजा जुआ खेलने के कारण ही नष्ट भ्रष्ट हो गये। जुआ का आया हुआ धन वेश्या सेवन, मांसभक्षण मदिरापान आदि कुकर्मों में जुआरियों की संगति से लगा करता है इस कारण जुए में जीतना और हारना दोनों ही हानि कारक हैं।

मांस त्रसजीवों की हिंसा से होता है तथा गीले सूखे पक्के कच्चे सभी तरह के मांस में प्रति समय असंख्य जीव उत्पन्न होते रहते हैं। अतः मांस खाना अयोग्य है और पापरूप है।

मदिरा [शराब] पान से बुद्धि नष्ट भ्रष्ट हो जाती है तथा धन का अपव्यय होता है और स्वास्थ्य खराब होता है इस कारण शराब पीना सब तरह से हानिकारक है।

प्राचीन कथा है कि वेश्या सेवन से करोड़पति चारुदत्त सेठ दीन दरिद्र बन गया था साधारण मनुष्य को तो वेश्या व्यसन से दीन दरिद्र बनने में क्या देर लग सकती है। वेश्याओं को गर्मी [आतशिक] आदि अनेक यौन रोग प्राय होते हैं। अतः वेश्या गमन करने वालों को भी अवश्य हो जाते हैं। अतः वेश्या व्यसन तन मन धन तीनों को नष्ट करने वाला है।

मनुष्य जब अपने शरीर की रक्षा चाहता है अपना जीवन निरापद शान्त चाहता है तो उसको अन्य जीवों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिये बन्दूक जाल धनुष बाण आदि से चिड़िया कबूतर हिरण, सिंह, मछली आदि का शिकार खेलना बड़ा भारी निर्दयता का महान पाप है।

गृहस्थाश्रम का सचालन धन सम्पत्ति से हुआ करता है इसी के लिये मनुष्य घोर परिश्रम करके धन उपार्जन करता है। और प्रत्येक मनुष्य को अपनी सम्पत्ति के साथ अपने प्राणों के समान प्रेम होता है। इस कारण यदि किसी मनुष्य की चोरी हो जाती है तो उसको अपने प्राण निकल जाने के समान दुख होता है। अतः चोरी करना महान् पाप है।

प्रत्येक मनुष्य की इच्छा रहती है कि मेरी पत्नी बहिन पुत्री माता को कोई अन्य व्यक्ति कामवासना की दृष्टि से न देखे और उसका शील भंग करे। तो उस मनुष्य का भी कर्तव्य है कि वह भी अपनी पत्नी के सिवाय अन्य स्त्रियों से व्यभिचार करने का त्याग करे। जो मनुष्य परस्त्री सेवन करते हैं उनके घर में सदाचार नहीं रहने पाता दुराचार फैल जाता है। रावण का सर्वनाश इसी कारण हुआ।

इस तरह ये सातों व्यसन मनुष्य का यश, धन, शरीर, सदाचार नष्ट भ्रष्ट करने वाले हैं अतः प्रत्येक स्त्री-पुरुष को इन व्यसनों के त्याग करने की कड़ी प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

जैनों की मूल मान्यताएँ

[१] यह लोक अनादि अनन्त तथा अकृत्रिम है। चेतन अचेतन छह द्रव्यों से भरा हुआ है। अनन्तानन्त जीव भिन्न भिन्न हैं। अनन्तानन्त परमाणु जड़ हैं।

[२] लोक के सब ही द्रव्य स्वभाव से नित्य हैं परन्तु अवस्था के बदलने की अपेक्षा अनित्य हैं।

[३] संसारी जीव प्रवाह की अपेक्षा अनादि से जड़ पाप-पुण्यमय कर्मों के शरीर में योगमें पाये हुए अशुद्ध हैं।

[४] हर एक संसारी जीव स्वतन्त्रता से अपने अशुद्ध भावों द्वारा कर्म बांधता है और वही अपने शुद्ध भावों से कर्मों का नाश कर मुक्त हो सकता है।

[५] जैसे किया हुआ भोजन पान स्थूल शरीर में स्वयं रसरूप रुधिर वीर्य बनकर अपना फल दिया करता है वैसे ही पापपुण्यमय सूक्ष्म शरीर स्वयं पाप पुण्य फल प्रकट करके आत्मा में क्रोधादि व दुःख सुख भुगवाया करता है। कोई परमात्मा किसी को दुख सुख नहीं देता।

[६] मुक्त जीव या परमात्मा अनन्त हैं। उन सबकी सत्ता भिन्न भिन्न है कोई किसी में मिलता नहीं। सब ही नित्य स्वात्मानन्द का भोग किया करते हैं तथा फिर कभी संसार अवस्था में नहीं आते।

[७] साधु गृहस्थ या साधुजन मुक्ति प्राप्त परमात्माओं की भक्ति व आराधना अपने परिणामों की शुद्धि के लिए करते हैं। उनको प्रसन्न करके उनसे फल पाने के लिए नहीं।

[८] मुक्ति का साक्षात् साधन अपने ही आत्मा को परमात्मा के समान शुद्ध गुण वाला जानकर—श्रद्धान् करके—और सब प्रकार का राग द्वेष मोह त्याग करके उसी का ध्यान करना है राग द्वेष मोह से कर्म बंधते हैं। इसके विपरीत वीतराग भावमयी आत्मसमाधि से कर्म झड़ [नाश हो] जाते हैं।

[९] अहिंसा परमधर्म है। साधु इसको पूर्णता से पालते हैं। गृहस्थ यथाशक्ति अपने-अपने पद के अनुसार पालते हैं। धर्म के नाम पर मांसाहार शिकार शौक आदि व्यर्थ कार्यों के लिए जीवों की हत्या नहीं करते हैं।

[१०] भोजन शुद्ध ताजा [मांस मदिरा, मधु रहित] व पानी छना हुआ लेना उचित है।

गृहस्थाश्रम का संचालन धन सम्पत्ति से हुआ करता है इसी के लिये मनुष्य घोर परिश्रम करके धन उपार्जन करता है। और प्रत्येक मनुष्य को अपनी सम्पत्ति के सार अपने प्राणों के समान प्रेम होता है। इस कारण यदि किसी मनुष्य की चोरी हो जाती है तो उसको अपने प्राण निकल जाने के समान दुख होता है। अत चोरी करना महान् पाप है।

प्रत्येक मनुष्य की इच्छा होती है कि मेरी पत्नी बहिन पुत्री, माता को कोई अन्य व्यक्ति कामवासना की दृष्टि से न देखे न उनका शील भग करे। तो उस मनुष्य का भी कर्तव्य है कि वह भी अपनी पत्नी के सिवाय अन्य स्त्रियों से व्यभिचार करने का त्याग करे। जो मनुष्य पर स्त्री सेवन करते हैं उनके घर में सदाचार नहीं रहने पाता दुराचार फैल जाता है। रावण का सर्वनाश इसी कारण हुआ।

इस तरह से सातों व्यसन मनुष्य का धर्म धन शरीर सदाचार नष्ट भ्रष्ट करने वाले हैं अत प्रत्येक स्त्री पुरुष को इन व्यसनों के त्याग करने की कड़ी प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

जैनों की मूल मान्यताएँ

[१] यह लोक अनादि अनन्त तथा अकृत्रिम है। चेतन अचेतन छह द्रव्यों से भरा हुआ है। अनन्तानन्त जीव भिन्न भिन्न हैं। अनन्तानन्त परमाणु जड हैं।

[२] लोक के सब ही द्रव्य स्वभाव से नित्य हैं परन्तु अवस्था के बदलने की अपेक्षा अनित्य हैं।

[३] संसारी जीव प्रवाह की अपेक्षा अनादि से अन्य पाप पुण्यमय कर्मों के शरीर से योगवश पाये हुए अशुद्ध हैं।

[४] हर एक संसारी जीव स्वतन्त्रता से अपने अशुद्ध भावों द्वारा कर्म बाँधता है और वही अपने शुद्ध भावों से कर्मों का नाश कर मुक्त हो सकता है।

[५] ग्रहण किया हुआ भोजन पान स्थूल शरीर में स्वयं रसरक्त रुधिर, वीर्य बनकर अपने फल को दिया करता है ऐसे ही पापपुण्यमय सूक्ष्म शरीर स्वयं पाप पुण्य फल प्रकट करके आत्मा में भावों के सुख दुख झलकाया करता है। कोई परमात्मा किसी को दुख सुख नहीं देता।

[६] मुक्त जीव या परमात्मा अनन्त हैं। उन सबकी सत्ता भिन्न भिन्न है कोई किसी में मिलता नहीं। सब ही नित्य स्वात्मानन्द का भोग किया करते हैं तथा फिर कभी संसार अवस्था में नहीं आते।

[७] साधक गृहस्थ या साधुजन मुक्ति प्राप्त परमात्माओं की भक्ति व आराधना अपने परिणामों की शुद्धि के लिए करते हैं। उनको प्रसन्न करके उनसे फल पाने के लिए नहीं।

[८] मुक्ति का साक्षात् साधन अपने ही आत्मा को परमात्मा के समान शुद्ध गुणवाला जानकर—श्रद्धान करके—और सब प्रकार का राग द्वेष मोह त्याग करके उसी का ध्यान करना है। राग द्वेष, मोह से कर्म बंधते हैं। इसके विपरीत वीतराग भावमयी आत्मसमाधि से कर्म झड़ [नाश हो] जाते हैं।

[९] अहिंसा परमधर्म है। साधु इसको पूर्णता से पालते हैं। गृहस्थ यथाशक्ति अपने-अपने पद के अनुसार पालते हैं। धर्म के नाम पर मांसाहार शिकार और आदि व्यर्थ कार्यों के लिए जीवों की हत्या नहीं करते हैं।

[१०] भोजन शुद्ध ताजा, [मांस मदिरा, मधु रहित] व पानी छना हुआ लेना उचित है।

[११] क्रोध मान माया लोभ यह चार आत्मा के शत्रु हैं इसलिए इनको दूर करना चाहिये।

[१२] साधु के नित्य छह कर्म ये है—सामायिक या ध्यान प्रतिक्रमण [पिछले दोषों की निन्दा] प्रत्याख्यान [आगामी के लिए दोष त्याग की भावना] स्तुति वन्दना, कायोत्सर्ग [शरीर की ममता का त्यागना]।

[१३] गृहस्थो के नित्य छह कर्म ये है—देव पूजा गुरु भक्ति शास्त्र पठन संयम तप और दान।

[१४] साधु नग्न होते हैं वह परिग्रह व आरम्भ नहीं रखते। अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रह त्याग इन पाँच महाव्रतों को पूर्ण रूप से पालते है।

[१५] गृहस्थो के आठ मूल हैं—मदिरा मांस मधु का त्याग तथा एक देश यथाशक्ति अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य व परिग्रह प्रमाण इन पाँच अणुव्रतों का पालना।

सूतक प्रकरण

सूतक मे देवगुरु शास्त्र का पूजन स्पर्शन, मन्दिर के वस्त्र पात्र का स्पर्शन तथा पात्रदान वर्जित है। सूतक काल पूर्ण होने पर प्रथम जिनेन्द्र पूजन प्रक्षाल तथा पात्रदान करके पवित्र होवें। सूतक का विधान इस प्रकार है —

[१] वृद्धि अर्थात् जन्म का सूतक [सुआ] १० दिन का माना जाता है।

[२] स्त्री का गर्भ जितने मास का पतन हो उतने दिन का सूतक

मृत्यु की मुख्यता से तीन दिन का कहा है । प्रसूति का एक ही दिन का है ।

[१३] जने पीछे भैंस का दुध १५ दिन तक गाय का १० दिन तक और बकरी का ८ दिन तक अशुद्ध होता है पश्चात् योग्य है ।

श्रावक-प्रतिक्रमण

मुनिचर्या का एक आवश्यक अंग प्रतिक्रमण है । अपने रात दिन की चर्या में प्रमाद वश जो दोष हो जाते हैं । उन दोषों की आलोचना प्रतिक्रमण करना है । प्रतिक्रमण द्वारा मुनिजन अपने चारित्र को निर्मल किया करते है ।

गृहस्थ भी उसी प्रतिक्रमण के अनुरूप सामायिक करते समय अपने दोषों की आलोचना करके अपने चारित्र की शुद्धि कर सकते है । अथवा जिनेन्द्र भगवान् के सामने खड़े होकर या बैठ कर आलोचना पाठ पढ़ते हुए अपने मन की शुद्धि कर सकते हैं ।

प्रत्येक स्त्री पुरुष प्रतिदिन सामायिक करते समय अथवा भगवान के सामने खड़े होकर या बैठकर आलोचना पाठ पढ़ते हुए अपने मन की शुद्धि कर सकते है ।

प्रत्येक स्त्री-पुरुष को प्रतिदिन सामायिक करते समय अथवा भगवान के सामने अच्छे धीमे स्वर से आलोचना पाठ अवश्य पढ़ना चाहिए । जिससे प्रमाद जनित दोषों की शुद्धि होती रहे ।

आलोचना पाठ

दोहा—वन्दों पांचों परमगुरु चौबीसों जिनराज ।
करूं शुद्ध आलोचना शुद्धि करन के काज ॥१॥

सखी छन्द चौपई भाषा

सुनिये जिन अरज हमारी । हम नाथ विध अति भारी ॥ तिनको भय निर्वारि काज । तुम शरण गही जिनराज ॥२॥ एक के त घड [illegible] था । मनरंजित ग्रहिन न जाया । जिनकी नाम करुणा धारा । निरमल हूँ ध्यान विचारी ॥३॥ समरंभ समारंभ आरंभ मन वचनन काय आरंभ । कृत कारित मोदन करके क्रोधादि चतुष्टय धरिके ॥ इन आठ जु दसि न सत कम कीन परोक्षनत जिनकी कछु याद न रहानी तुम जानत वचन—[illegible] ॥४॥ विपरीत एकान्त विनयके । संशय अज्ञान कुनयके । वश होय घोर अघ कीने वचन तै नहिं जाय वरणीने ॥६॥ कुगुरुन सेवा कीनी केवल अन्यायकरि भीनी । याविधि मिथ्यात्व कषाया चहुंगति मधि दोष उपाया ॥७॥ हिंसा पुनि झूठ जु चोरी परवनितासों हग जोरी । आरंभ परिग्रह भीनो पनपाप जु या विधि कीनो ॥८॥ सपरस रसना घ्राननको चषु कान विषय सेवनको । बहु करम किये मनमानी कछु न्याय अन्याय न जानी ॥९॥ फल पंच उदम्बर खाये मधु मांस मद्य चित चाहे । नहीं अष्टमूल-गुणधारी विषयन सेये दुखकारी ॥१०॥ दुइबीस अभख जिन गाये सो भी निशिदिन भुंजाये । कछु भेदाभेद न पायो ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥११॥ अनंतानु जु बंधी जानो प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो । संज्वलन चौकड़ी गुनिये सब भेद जु षोडश गुनिये ॥१२॥ परिहास अरति रति शोग । भय ग्लानि तिवेद संयोग ॥ पनबीस जु भेद भये इम । इनके वश पाप किये हम ॥१३॥ निद्रावश शयन कराई सुपने मधि दोष लगाई । फिर जागि विषय वन धायो । नाना विध विषफल खायो ॥१४॥ कियेआहार निहार विहारा इनमें नहीं जतन विचारा । बिन देखा धरा उठाइ बिन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५॥ तब ही परमाद सतायो बहु विधि विकलप उपजायो । कछु सुधि बुधि [illegible] मिथ्यामति छाय गयी है ॥१६॥ मरजा [illegible] तुम [illegible]

मृत्यु की मुख्यता से तीन दिन का कहा है। प्रसूति का एक ही दिन का है।

[१३] जने पीछे भैंस का दूध १५ दिन तक गाय का १० दिन तक और बकरी का ८ दिन तक अशुद्ध होता है पश्चात योग्य है।

श्रावक-प्रतिक्रमण

मुनिचर्या का एक आवश्यक अंग प्रतिक्रमण है। अपने रात दिन की चर्या में प्रमाद वश जो दोष लग जाते हैं। उन दोषों की आलोचना प्रतिक्रमण करना है। प्रतिक्रमण द्वारा मुनिजन अपने चारित्र को निर्मल किया करते हैं।

गृहस्थ भी उसी प्रतिक्रमण के अनुरूप सामायिक करते समय अपने दोषों की आलोचना करके अपने चारित्र की शुद्धि कर सकते हैं। अथवा जिनेन्द्र भगवान के सामने खड़े होकर या बैठ कर आलोचना पाठ पढ़ते हुए अपने मन की शुद्धि कर सकते हैं।

प्रत्येक स्त्री पुरुष प्रतिदिन सामायिक करते समय अथवा भगवान के सामने खड़े होकर या बैठकर आलोचना पाठ पढ़ते हुए अपने मन की शुद्धि कर सकते हैं।

प्रत्येक स्त्री-पुरुष को प्रतिदिन सामायिक करते समय अथवा भगवान के सामने ऊँचे धीमे स्वर से आलोचना पाठ अवश्य पढ़ना चाहिए। जिससे प्रमाद जनित दोषों की शुद्धि होती रहे।

आलोचना पाठ

दोहा—वन्दों पाँचों परमगुरु चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना शुद्धि करन के काज ॥१॥

सखी छन्द चौदह मात्रा

सुनिये जिन अरज हमारी। हम दोष किये अति भारी॥ तिनकी अब
निवृत्ति काज। तुम सरन लही जिनराज ॥२॥ इक बे ते चउ इन्द्री वा।
मनरहित सहित जे जीवा। तिनकी नहिं करुणा धारी। निरदई ह्वै घात
विचारी ॥३॥ समरंभ समारंभ आरंभ मन वचतन कीने प्रारंभ। कृत
कारित मोदन करिकै क्रोधादि चतुष्टय धरिकै॥ शत आठ जु इमि भेदनतै
अघ कीने परछेदनतै तिनकी कहुँ कोलौं कहानी तुम जानत केवल—
ज्ञानी ॥५॥ विपरीत एकान्त विनय के। संशय अज्ञान कुनय के। वश
होय घोर अघ कीने वचतै नहिं जाय कहीने ॥६॥ कुगुरुन सेवा कीनी
केवल अदयाकरि भीनी। याविधि मिथ्यात्व भ्रमायो चहुंगति मधि दोष
उपायो ॥७॥ हिंसा पुनि झूठ जु चोरी परवनितासों दृग जोरी। आरंभ
परिग्रह भीनो पनपाप जु या विधि कीनो ॥८॥ सपरस रसना घ्राननको
चखु कान विषय सेवन को। बहु करम किये मनमाने कछु न्याय अन्याय
न जाने ॥९॥ फल पंच उदंबर खाये मधु मांस मद्य चितचाहे। नहिं
अष्टमूल-गुणधारे विषसनसेये दुखदायी ॥१०॥ दुइवीस अभख जिन गाये
सो भी निशिदिन भुंजाये। कछु भेदाभेद न पायो ज्यों त्यों करि उदर
भरायो ॥११॥ अनन्तानु जु बंधी जानो प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये सब भेद जु षोडश मुनिये ॥१२॥ परिहास
अरति रति शोग। भय ग्लानि तिवेद संयोग॥ पनबीस जु भेद भये
इम। इनके वश पाप किये हम ॥१३॥ निद्रावश शयन कराई सुपने
मधि दोष लगाई। फिर जागि विषय वन धायो। नाना विध विषफल
खायो ॥१४॥ आहार निहार विहारा इनमें नहिं जतन विचारा
बिन देखा धरा उठाई बिन शोधी वस्तु जु खाई
सताया बहु विधि विराधना उपजायो।
मिथ्यामति छाय गया है

दोष जु कीनो। भिन भिन अब कैसे कहिये तुम ज्ञान विषैं सब पइये
॥१७॥ हा हा! मैं दुष्ट अपराधी त्रसजीवन राशि विराधी। थावरकी
जतन न कीनो उरमें करुना नहिं लीनो ॥१८॥ पृथिवी बहु खोद कराई।
महलादिक जागां चिनाई॥ पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो पखातें पवन
बिलोल्यो ॥१९॥ हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी॥
तामधि जीवन के खंदा हम खाये धरि आनन्दा ॥२०॥ हा हा! परमाद
बसाई बिन देखे अगनि जलाई। तामध्य जे जीव जे आये, ते हू परलोक
सिधाये ॥२१॥ बींध्यो अन राति पिसायो ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाडू ले जागा बुहारी चिंटियादिक जीव बिदारी ॥२२॥ जल छानि
जिवानी कीनी सो हू पुनि डारि जु दीनी। नहिं जलथानक पहुँचाई।
किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥ जलमलमोरिन गिरवायो। कृमिकुल बहु
घात करायो॥ नदियन बिच चीर धुवाये। कोसनके जीव मराये ॥२४॥
अन्नादिक शोध कराई तामें जु जीव निसराई। तिनका नहिं जतन
कराया गलियारे धूप डराया ॥२५॥ पुनि द्रव्य कमावन काज बहु
आरंभ हिंसा साज। कीये तिसनावश भारी करुणा नहिं रंच विचारी
॥२६॥ ताको जु उदय अब आयो। नाना विधि मोहि सतायो॥ फल
भुंजत जिय दुख पावै वचतें कैसे करि गावैं ॥२७॥ तुम जानत केवल
ज्ञानी दुख दूर करो शिवथानी। हम तो तुम शरण लही है जिन तारन
बिरद सही है ॥२८॥ जो गांवपती इक होय सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी दुख मेटहु अन्तरजामी ॥२९॥ द्रौपदी का चीर
बढायो सीताप्रति कमल रचायो। अंजन से किये अकामी दुख मेटो
अंतरजामी ॥३०॥ मेरे अवगुन न चितारो प्रभु अपनो बिरद निहारो।
सब दोषरहित करि स्वामी दुख मेटहु अंतरजामी ॥३१॥ इन्द्रादिक पदवी
नहिं चाहूं विषयनि में नाहिं लुभाऊं। रागादिक दोष हरीजे परमातम
निजपद दीजे ॥३२॥

दोहा—दोष रहित जिनदेव जी निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै आनंद मंगल होय॥
अनुभव माणिक पारखी जौहरि आप जिनंद।
ये ही वर मोहि दीजिये चरन शरन आनन्द ॥३४॥

वैराग्यभावना

(वज्रनाभि चक्रवर्ती)

बीज राखि फल भोगवै ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै धर्म विसारै नाहिं॥

जोगीरासा वा नरेंद्र छन्द

इहविध राज करै नरनायक भोगै पुण्य विशाला।
सुखसागर में रमत निरन्तर जात न जान्यो काला॥
एक दिवस शुभ कर्मसंजोगे क्षेमकर मुनि वंदे।
देखे श्रीगुरु के पदपंकज लोचन अलि आनंदे॥२॥
तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो कर पूजा थुति कीनी।
साधुसमीप विनय कर बैठ्यो चरननमें दिठि दीनी॥
गुरु उपदेश्यो धर्मशिरोमणि सुन राजा वैरागे।
राज रमा वनितादिक जे रस ते रस बेरस लागे॥३॥
मुनिसूरजकथनीकिरणावलि लगत भरमबुधि भागी।
भवतनभोगस्वरूप विचार्यो परम धरम अनुरागी॥
या संसार महावन भीतर भ्रमत ओर न आवै।
जामन मरन जरा दव दाझै जीव महादुख पावै॥४॥
कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै छेदन भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ वध बंधन भयकारी॥
सुरगतिमें परसंपति देखे राग उदय दुख होई।
मानुषयोनि अनेक विपतिमय सर्वसुखी नहिं होई॥५॥
कोई इष्ट वियोगी विलखै कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री विगूचे कोई तनका रोगी॥
किसही घर कलिहारी नारी कै बैरी सम भाई।
किसही के दुख बाहिर दीखै किसही उर दुचिताई॥६॥
कोई पुत्र बिना नित झूरै होय मरै तब रोवै।
खोटी संततिसों दुख उपजै क्यों प्रानी सुख सोवै॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुख साता।

यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुखदाता ।।७।।
जो संसारविषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागैं ।
काहेको शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागैं ॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामैं सार न कोइ ।
सागरके जलसों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होइ ॥८॥
सात कुधातुभरी मलमूरत, चाम लपेटी सोहै ।
अंतर देखत या सम जगमें, और अपावन को है ॥
नवमलद्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवै ।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै ॥९॥
पोषत तो दुख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै ।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ॥
राचनजोग स्वरूप न याको, विरचनजोग सही है ।
यह तन पाय महातप कीजै, यामें सार यही है ॥१०॥
भोग बुरे भवरोग बढ़ावैं, बैरी हैं जग जीके ।
बेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके ।
वज्र अगिनि विषसे विषधरसे, ये अधिके दुखदाई ।
धर्मरतनके चोर चपल अति, दुर्गतिपंथ सहाई ॥११॥
मोहउदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै ।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानै ॥
ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर, मनवांछित जन पावै ।
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंकै, लहर जहर की आवै ॥१२॥
मैं चक्रीपद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे ।
तो भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥
राजसमाज महा अघकारण, बैरबढ़ावनहारा ॥
वेश्यासम लछमी अति चंचल, याका कौन पत्यारा ॥१३॥
मोहमहारिपु बैर विचारयो, जगजिय संकट डारे ।
घर कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञानचरण तप, ये जियके हितकारी ।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥१४॥

धारे चौदहरतन नवनिधि, अरु छोड़े संग साथी।
छांडि अठारह कोड़ि घोड़े चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक संपति बहुतेरी जीरणतृणसम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुतकों राज दिया बड़भागी॥१२॥
होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्रीगुरुचरणधरी जिनमुद्रा पंच महाव्रत धारे॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम धनि यह धीरजधारी।
ऐसी संपति छोड़ बसे वन तिन पद धोक हमारी॥१३॥

दोहा

परिग्रहपोट उतार सब लीनो चारित पंथ।
निज स्वभावमें थिर भये वज्रनाभि निरग्रंथ॥

इति श्री वज्रनाभि चक्रवर्तीकी वैराग्य भावना।

सिद्धचक्र की स्तुति

(श्री व्याख्यान वाचस्पति प० मक्खनलाल जी देहली)

श्री सिद्धचक्र का पाठ करो दिन आठ।
ठाठ से प्राणी फल पाया मैना रानी।टेक।
मैना सुन्दरि इक नारी थी कोढ़ी पति लख दुखियारी थी
नहिं पड़े चैन दिन रैन व्यथित अकुलानी॥ फल पाया०
जो पति का कष्ट मिटाऊंगी तो उभय लोक सुख पाऊंगी।
नहिं अजागलस्तनवत निष्फल जिन्दगानी॥ फल पाया०
इक दिवस गई जिन मंदिर में दर्शन कर अति हर्षी उर में
फिर लखे साधु निर्ग्रंथ दिगम्बर ज्ञानी॥ फल पाया०
बैठी कर मुनिको नमस्कार निज निन्दा करती हाहाकार।
भरि अश्रु नयन कह मुनिसों दुखद कहानी॥ फल पाया०
बोले मुनि पुत्री धैर्य धरो श्री सिद्धचक्र का पाठ करो।
नहिं रहे कुष्ठ का तन में नाम निशानी॥ फल पायो
सुन साधु वचन हर्षी मैना नहिं होय झूठ मुनि के वैना।
करके श्रद्धा श्री सिद्धचक्र की [illegible]

अब पव अठाई आया है उत्सव युत पाठ कराया है।
सब के तन छिड़का जब न्हवन का पानी ।। फल पायो०
ग'धादक छिडकत वसु दिन में नहिं रह्या कुष्ठ किंचित तन में
भई सात शतक की काया स्वर्ण समानी ।। फल पायो०
भव भोग भोगि योगीश भये श्रीपाल कर्म हनि मोक्ष गये।
दूजे भव मैना पावे शिव रजधानी ।। फल पायो०
जो पाठ करें मन वच तन से, वे छूट जाय भव बन्धन से।
मक्खन' मत करो विकल्प कहे जिनवानी ।। फल पायो०

चार रतन

साचा देव सोही जामें दोष को न लेश कोई
साचो गुरु वह जाके उर की न चाह है।
सही धर्म वही जहां करुणा प्रधान कही
ग्रन्थ जहाँ आदि अन्त एक सो निवाह है।
ये ही जग रत्न चार इनको परख यार
साचे लेहु झूठे डार नरभव को लाह है।
मानुष विवेक बिना पशु के समान गिना
तातें याहि बात ठीक पारनी सलाह है।

आरती

यह विधि मंगल आरती कीजे।
पंच परम पद भजि सुख लीजे ।। टेक ।।
प्रथम आरती श्री जिनराजा भव जल पार उतार जिहाजा
दूजी आरती सिद्धन केरी सुमरण करत मिटे भव फेरी।
तीजी आरती सूर मुनिन्दा, जन्म मरण दुःख दूर करिन्दा
चौथी आरती श्री उवज्झाया दर्शन देखत पाप पलाया
पाँचवीं आरती साधु तुम्हारी कुमति विनाशन शिव अधिकारी
छट्ठी ग्यारह प्रतिमाधारी श्रावक वन्दों आनन्द कारी
सातवीं आरती श्री जिनवाणी द्यानत स्वर्ग मुक्तिदानी

श्री भगवान पार्श्वनाथ जी की स्तुति

तुमसे लागी लगन, ले लो अपनी शरण, पारस प्यारा।
मेटो मेटो जी संकट हमारा॥

निश दिन तुमको जपूँ, पर से नेहा तजूँ।
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा॥
मेटो मेटो०॥

अश्वसेन के राजदुलारे, वामा देवी के सुत प्राण प्यारे।
सबसे नेहा तोड़ा, जग से मुँह को मोड़ा, संयम धारा॥
मेटो मेटो०॥

इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये देवी पद्मावती मंगल गाये।
आशा पूरो सदा, दुःख नहीं पावे कदा, सेवक थारा॥
मेटो मेटो०॥

जग दुःख की तो परवाह नहीं है स्वर्ग सुख की भी चाह नहीं है।
मेटो जामन मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा॥
मेटो मेटो०॥

लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊं, जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊं॥
'पंकज' व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया, लागे खारा॥
मेटो मेटो०॥